शोध सरोवर पत्रिका

आरती, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

RNI No. KERHIN/2017/70008 ISSN No. 2456-625 X

वर्ष 5 अंक 19 त्रैमासिक हिन्दी शोध पत्रिका 10 जुलाई 2021

पिअर रिव्यू समितिः

डॉ.टी.के.नारायण पिल्लै

डॉ.शांति नायर

डॉ.के.श्रीलता

मुख्य संपादक

डॉ.पी.लता

प्रबंध संपादक

डॉ.एस.तंकमणि अम्मा

सह संपादक

प्रो.सती.के

डॉ.एस. लीलाकुमारी अम्मा

श्रीमती वनजा.पी

संपादक मंडल

डॉ.बिन्दु.सी.आर

डॉ.षीना.यू.एस

डॉ.सुमा.आई

डॉ.एलिसबत्त जोर्ज

डॉ.लक्ष्मी.एस.एस

डॉ.धन्या.एल

डॉ.कमलानाथ.एन.एम

डॉ.अश्वती.जी.आर

सूचना : पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के हैं। उनसे संपादक तथा प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

इस अंक में

संपादकीय	:	3
हिन्दी महिला लेखन : दशा और दिशा	: डॉ.एस.तंकमणि अम्मा	4
स्त्री सशक्तीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी कविता	: प्रो. एन.जी. देवकी	11
सही उत्तर चुनें	: डॉ.पी.लता	13
आर्थिक रूप में नारी सशक्तिकरण 'छिन्नमस्ता' में	: डॉ. लीलाकुमारी अम्मा.एस	14
स्त्री मुक्ति की लम्बी दास्तानः प्रभा खोतान के उपन्यास	: डॉ.रॉय जोसफ	17
ग्रेस कुज़ूर की कविताओं में नारी स्वरूप	: डॉ. मंजु रामचंद्रन	20
सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानियों में नारीः	डॉ.लक्ष्मी.एस.एस	23
भारतीय समाज और स्त्री मानवाधिकार	: डॉ.प्रिया.ए	28
स्त्री अस्तित्व की तलाशः सुधा अरोड़ा की कहानियों में	: डॉ.रीनाकुमारी.वी.एल	32
'कठगुलाब' में नारी की जिजीविषा	: डॉ.सौम्या.वी.एम	35
'दौड़' उपन्यास में नारी संघर्ष का चित्रण	: डॉ. रम्या प्रसाद	39
मीराकान्त के नाटक 'नेपथ्यराग' में चित्रित समस्याए	: डॉ.अंजली.एन	43
कुबेरनाथ राय के निबंधों में सांस्कृतिक चेतना	: मंजू नायर.एस	48

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मैलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ डी.वी.सुरेख ई.एन फोण्ट में वर्ड या पेजमेकर फाइल में भेजें। रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता भी अंकित करें। संक्षिप्त जीवन-परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक

डॉ.पी.लता

शोध सरोवर पत्रिका

केरल विश्वविद्यालय से अनुमोदित पत्रिका

मूल्य : एक प्रति रु. 100/-
वार्षिक शुल्क रु.400/-

सहकर्मी पुनरवलोकन समिति
(पीयर रिव्यूड जर्नल):
डॉ.टी.के.नारायण पिल्लै
डॉ.शांति नायर
डॉ.के.श्रीलता

पत्रिका के संबंध में अधिक जानकारी केलिए संपर्क करें - डॉ.पी.लता (संपादक, शोध सरोवर पत्रिका; मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी), आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफीस लेन, ई-28, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य। फोन : 0471 - 2332468, 9946253648
ई-मेल : akhilbharatheeyhindiacademy@gmail.com
वेबसाइट : www.shodhsarovarpathrika.co.in

संपादकीय

केरल की हिंदी कवयित्रियाँ

वर्तमान काल में स्त्री किसी भी कार्य क्षेत्र में पुरुष के पीछे नहीं है। लेखन-कार्य के संदर्भ में भी यह बात सही है। 'हिन्दी में महिला लेखन' पर 'शोध सरोवर पत्रिका' का यह अंक प्रकाशित होता है। हिंदी क्षेत्र की लेखिकाओं पर इस अंक में कई लेख संकलित हैं। केरल में भी हिंदी माध्यम से लिखनेवाली कई महिलाएँ हैं। अतः केरल के महिला लेखन पर चंद शब्द ही सही, इस अंक में न छपें तो यह अधूरा रह जाएगा।

हिंदीतर क्षेत्र केरल में सभी साहित्य विधाओं में हिंदी में लेखन-कार्य हो रहे हैं। यहाँ के लेखकों-लेखिकाओं की कई मौलिक तथा अनूदित रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। कई साहित्येतर रचनाएँ भी प्रकाशित हुई हैं। कुछ लेखिकाओं की रचनाएँ विश्वविद्यालयों में पाठ्य पुस्तकें हैं। कुछ लेखिकाएँ ऐसी भी हैं, जिनकी रचनाएँ हिंदी क्षेत्र के नामी प्रकाशकों से प्रकाशित हुई हैं।

केरलीय हिंदी लेखिकाओं की समस्त रचनाओं का परिचय सीमित पृष्ठों में देना नामुमकिन है। इसलिए प्रकाशित कविता रचनाओं का मात्र परिचय देना चाहती हूँ। प्रकाशित काव्य संकलन इस प्रकार हैं - 'नया युग' कविता संकलन (डॉ.एल.सुनीता बाई), 'केरल प्रसून' (श्रीमती. टी.एस.पोन्नम्मा), 'सोचो फिर एक बार', 'आज की सुबह', 'कौसल्या अम्माल की कविताएँ' (श्रीमती कौसल्या अम्माल), 'बेड़ा पार करना है', 'अग्नि में शांत' खंडकाव्य (डॉ.जी.कमलम्मा), 'नकली दुनिया' (डॉ.प्रेमा कुमारी), 'यादों में', 'मौन बोल रहा है', 'आँखिन में काजल' (डॉ.एम.सी.स्वर्णलता) 'समय' (टी.के.हेमलता), 'सपनों का महल', 'पूजा की आँखें' (श्रीमती द्रौपदी नायर), 'जिसकी लाठी उसकी भैंस', 'अनरुकी आवाज़' (डॉ.जे.उमाकुमारी), 'आरती' (डॉ.पी.लता), 'कुसुमांजलि' (डॉ.एल.षीलाकुमारी), 'कोंपलें' (डॉ.प्रिया.ए) 'बाष्पांजलि' (श्रीमती आनंदवल्ली), 'ऐसा क्यों?' (दिया नायर नंपियार), 'देशराग (राजपुष्पम् पीटर) आदि। डॉ.एस.तंकमणि अम्मा, डॉ.के.एम.मालती, प्रो.हिल्डा जोसफ, प्रो.एन.सत्यवती, डॉ.शांति नायर और डॉ.के.पी.उषा कुमारी की कविताएँ विविध हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। 'अंतर्राष्ट्रीय महिला काव्यमंच' की केरल इकाई में केरल की तीस कवयित्रियाँ सम्मिलित हैं। ये मासिक कवयित्री सम्मेलनों में अपनी-अपनी कविताएँ प्रस्तुत करती हैं।

डॉ.एल.सुनिता बाई तथा डॉ.एन.ई.विश्वनाथ अय्यर के संयुक्त प्रयास से प्रकाशित अनुवाद संकलन हैं - 1. 'मलयालम काव्यधारा प्राचीन खंड' और 2. 'मलयालम काव्यधारा आधुनिक खंड'। हिंदी काव्यों के मलयालम अनुवादक हैं - श्रीमती.ई.भार्गवि अम्मा ('पंचवटी' काव्य का अनुवाद), डॉ.प्रमीला.के.पी(पवन किरण की कविताओं के अनुवादों का संकलन 'स्त्री एन्टे उल्लिल'), श्रीमती.के.पी.पार्वती अम्माल ('रामचरितमानस' का गद्यानुवाद) आदि। मलयालम काव्यों के हिंदी अनुवादक हैं -डॉ.जी.कमलम्मा ('रामचरितमानस' का गद्यानुवाद), डॉ.एन.जी.देवकी (सुगतकुमारी के 'राधा एविटे?' काव्य का अनुवाद

'राधा कहाँ है?'), डॉ.एस.तंकमणि अम्मा (अय्यप्प पणिक्कर के 'गोत्रयानं' का अनुवाद 'गोत्रयान', कुमारनाशान के 'लीला' काव्य का अनुवाद, ओ.एन.वी.कुरुप के 'स्वयंवरं' काव्य का अनुवाद 'स्वयंवर', ओ.एन.वी.कुरुप की फुटकल कविताओं के अनुवादों का संकलन 'एक धरती एक आसमान, एक सूरज' आदि), डॉ.पी.लता (श्रीकुमारन तंपी की कविताओं के अनुवाद 'श्रीकुमारन तंपी की कविताएँ', ओ.एन.वी.कुरुप की कविताओं के अनुवाद 'ओ.एन.वी.कुरुप की प्रतिनिधि कविताएँ', एस.रमेशननायर के 'गुरु पौर्णमी' काव्य का अनुवाद, के.वी.तिक्कुरुशी के 'राधा माधवं' काव्य का अनुवाद) आदि। डॉ.शांति नायर द्वारा मलयालम से हिंदी में अनूदित कविताएँ कुछ हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। डॉ.एस.तंकमणि अम्मा तथा डॉ.पी.लता के कुछ अनुवाद पुरस्कृत हुए हैं।

स्पष्ट है कि काव्य साहित्य को केरल की हिंदी कवयित्रियों ने मौलिक रचनाओं तथा अनुवादों से समृद्ध किया है। अन्य साहित्य विधाओं को भी केरल की हिंदी लेखिकाओं की देन सराहनीय है।

♦ संपादक
डॉ.पी.लता
मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी
(पूर्व अध्यक्षा, हिन्दी विभाग,
सरकारी महिला महाविद्यालय)
फोन : 9946253648

हिन्दी महिला लेखन : दशा और दिशा

♦ डॉ.एस.तंकमणि अम्मा

आज महिला लेखन विश्व साहित्य के समानांतर भारतीय साहित्य का भी मुख्य और बहुचर्चित विषय बन चुका है। भारतीय भाषाओं की भाँति हिन्दी साहित्य में भी महिला लेखन ने अपनी अलग और विशिष्ट पहचान बना ली है। इसके मूल में वैश्विक स्तर पर शक्ति और विकास को प्राप्त स्त्री-मुक्ति संघर्ष का हस्तक्षेप स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। सदियों से अनगिनत रूढ़ियों और बहुविध शोषण की शिकार बनी स्त्री की सामाजिक प्रतिक्रिया ने स्त्री-मुक्ति संघर्ष को जन्म दिया तो स्त्री-मुक्ति संघर्ष जनित क्रिया-प्रतिक्रिया ने दुनिया भर के महिला-लेखन को नयी ऊर्जा और ऊष्मा प्रदान की है।

माना जा सकता है कि बीसवीं शती के सातवें दशक से लेकर महिला लेखन हाशिए से केन्द्र में प्रविष्ट हो चुका है। महिला रचनाकारों की कृतियाँ प्रभूत मात्रा में प्रकाश में आती हैं और खूब पढ़ी भी जाती हैं। "हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास" में डॉ.बच्चन सिंह ने 'स्त्री-लेखन की समानांतर दुनिया' शीर्षक से स्त्री-लेखन की अलग से चर्चा की है। अन्य इतिहास लेखकों और समीक्षकों की दृष्टि भी इस ओर गई है। महिला लेखन पर चर्चा-परिचर्चाएँ और संगोष्ठियाँ भी चलती हैं। पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांक भी निकले हैं। अनेक विश्वविद्यालयों के स्नातक तथा स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में महिला-लेखन मुख्य विषय बन चुका है। महिला साहित्यकारों पर एम.फिल तथा पीएच.डी के

शोधकार्य भी बड़ी मात्रा में चलते हैं। महिला लेखन कई बार पुरस्कृत भी हुआ है। आशापूर्णा देवी (बंग्ला), अमृता प्रीतम (पंजाबी), महादेवी वर्मा (हिन्दी), कुर्रतुलऐन हैदर (उर्दू), महाश्वेता देवी (बंग्ला), इंदिरा गोस्वामी (असमिया) तथा प्रतिभा राय (उड़िया) को प्राप्त ज्ञानपीठ पुरस्कार महिला-लेखन की स्वीकृति और महत्व को ही चिह्नित करते हैं।

महिला लेखन और महिलावादी लेखन

'महिला लेखन' और 'महिलावादी लेखन' के पार्थक्य को समझना आवश्यक है। सामान्य अर्थ में महिलाओं द्वारा रचित साहित्य महिला लेखन है। किंतु सारा महिला लेखन महिलावादी लेखन के अन्तर्गत समाहित नहीं हो सकता। महिलावादी लेखन का प्रयोग एक विशिष्ट अर्थ में ही चलता है। इसमें नारी-मुक्ति, नारी-चेतना, नारी-अस्मिता तथा उत्तराधुनिक परिवेश में जन्मी और पनपी नारी से जुड़ी विभिन्न समस्याओं का जीवंत अंकन होता है। महिला-लेखन जहाँ मात्र महिलाओं का लेखन है, वहाँ महिलावादी साहित्य को लेकर बहस चलती है कि पुरुष साहित्यकारों के द्वारा रचित स्त्रीवादी साहित्य भी क्या उसके अन्तर्गत समाविष्ट हो सकता है। किंतु अपने विशिष्ट अर्थ में स्त्री द्वारा स्त्री के लिए स्त्री के विषय में विरचित साहित्य ही महिलावादी लेखन के अंतर्गत आता है। क्योंकि स्त्रियों की दैहिकता और मानसिकता संबन्धी पुरुष-लेखन का अनुमानित वर्णन होता है वहाँ स्त्री-लेखन अनुभव-जन्य होता है। एक बड़ा-सा प्रश्न चिह्न यह है कि क्या महिला लेखन ने पुरुष वर्चस्ववाले समाज में कोई महत्वपूर्ण क्रांति मचा पायी कि नहीं। इसका जवाब यही निकलता है कि स्त्री-स्वतंत्रता तथा समाज में स्त्री के अधिकारों के प्रति उसे सचेत करने की दिशा में महिला रचनाकारों का साहित्य थोड़ा-बहुत सहायक सिद्ध हुआ है। खासकर लेखिकाएँ जो सामाजिक कार्यकर्त्रियों के तौर पर कार्यरत हैं उनकी रचनाओं और उद्‌बोधनों का प्रभाव अवश्य ही आम स्त्री समाज पर पड़ता जा रहा है जिसका गुणात्मक परिणाम भी निकल रहा है।

हिन्दी महिला लेखन का प्रथम प्रस्फुटन

यह बात नहीं है कि स्त्री-मुक्ति संघर्ष के ज़ोर पकड़ने के बाद ही महिला लेखन का प्रारंभ हुआ है। हिन्दी साहित्य के इतिहास से गुज़रने पर सर्वप्रथम **मीराबाई** ऐसी कवयित्री के रूप में प्रकट होती हैं जिनका लेखन देशातीत और कालातीत यश को प्राप्त कर गया है। महिला लेखन के इतिहास में सोलहवीं शती की मीरा का महत्व इसलिए है कि उन्होंने अपने पैरों में जकड़ी राजपरिवार की रूढ़ियों की बेड़ी को झटककर तोड़ दिया था, तथाकथित लोकमर्यादा की धूल उड़ा दी थी तथा ज़िन्दगी के तमाम संघर्षों को झेलकर भी मुस्कुराते हुए उसने गिरिधर गोपाल के आगे सुध-बुध खोकर नाचकर मुक्ति पाने का जोखिम उठाया था। 'कोई कछु कहे मन लागा, मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई' कहकर राजमहल को छोड़ निकलनेवाली मीरा नारी-मुक्ति संघर्ष की सशक्त वक्ता ही रही थीं। तुलसीदास की पत्नी रत्नावली भी अवश्य ही कवित्वसंपन्न नारी रही होगी जिसने आधी रात के समय अपने निकट आये पति को 'लाज न लागत आप को....' का उद्‌बोधन देकर रामभक्ति की ओर उन्मुख कर दिया था।

भक्ति काल के बाद आधुनिक काल के नवजागरण काल तक के लंबे अंतराल में लेखन-कार्य में लगी महिलाओं का उल्लेख नहीं मिलता।

महिला लेखन का प्रारंभिक दौर

हिन्दी महिला लेखन की परंपरा की शुरुआत आधुनिक काल से ही होती है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक नवजागरण ने समूचे भारत के जनमानस में नयी स्फूर्ति और चेतना जगायी। स्त्रियों की शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक उन्नति को ध्यान में रखकर कई पत्रिकाएँ इस दौरान निकलीं। उमेशचन्द्रदत्त द्वारा संपादित 'वामा बोधिनी' (सन् 1863), 'अबला बान्धवा' (1869), गिरीशचन्द्र सेन द्वारा संपादित 'महिला' आदि ऐसी ही पत्रिकाएँ थीं। ऐसी भी पत्रिकाएँ निकली थीं, जिनकी संपादक स्वयं महिलाएँ रहीं। 'भारती' (स्वर्णकुमारी घोसन तथा उनकी सुपुत्रियों द्वारा संपादित), 'सुप्रभात' (कुमुदिनी और बसंती मित्रा नामक दो स्नातक बहनों द्वारा संपादित) जैसी पत्रिकाएँ प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत की जा सकती हैं। स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान महात्मा गाँधी ने स्त्रियों से पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धे मिलाकर देश के लिए लड़ने का जो आह्वान किया था, उससे प्रेरणा पाकर कई शिक्षित महिलाएँ घर-परिवार की चहारदीवारी के बाहर सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण कर गयीं। इस दौरान पत्र-पत्रिकाओं में महिलाओं की रचनाएँ स्थान पाने लगीं।

कविता

इस दौरान कविता के क्षेत्र में यश प्राप्त करनेवाली रचनाकारों में **सुभद्राकुमारी चौहान** का नाम आता है। उनकी अधिकांश कविताएँ पारिवारिक और राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित हैं। वात्सल्य से भरी उनकी कविताएँ भी विशेष चर्चित रहीं। 'झांसी की रानी', 'जलियांवाला बाग' जैसी कविताएँ उनकी राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यंजित करती हैं तो 'मेरा नया बचपन' जैसी कविताएँ उनकी नारी-भावना को अभिव्यक्त करती हैं। उनके बारे में महादेवी वर्मा के ये शब्द उल्लेखन योग्य हैं - "अजगर की कुंडली के समान स्त्री के व्यक्तित्व को कस-कस कर चर-चर कर देनेवाले अनेक सामाजिक बंधनों को तोड़ फेंकने में उनका जो प्रयास लगा होगा, उसका मूल्यांकन संभव नहीं है।"

स्वातंत्र्योत्तर काल

हिन्दी महिला लेखन को गौरवान्वित करनेवाली रचनाकार रही हैं **महादेवी वर्मा।** उन्होंने कविताओं से बढ़कर अपनी गद्य रचनाओं के ज़रिए भारतीय नारी के उत्पीड़नों के दर्दनाक चित्र उकेरते हुए उसे उनसे उबारने का मार्ग प्रशस्त किया। अपनी कविताओं के माध्यम से उन्होंने स्त्रियों को लौह शृंखला को तोड़कर मुक्त होने का आह्वान दिया।

"कीर का प्रिय आज पिंजरा खोल दो
.....
अब अलस बंदी युगों का
ले उड़ेगा शिथिल कारा
पंख पर वे सजल सपने तोल दो।"

सप्तकीय कवियों में 'तारसप्तक' में स्त्री का कविता संलग्न नहीं है। 'दूसरा सप्तक' में शकुंत माथुर की कविता, 'तीसरा सप्तक' में कीर्ति चौधरी की कविता तथा 'चौथा सप्तक' में सुमन राजे की कविता संलग्न हैं।

सन् साठ से अकविता का दौर चला तो उसमें कई कवयित्रियों का भी योगदान रहा। अकविता की तर्ज पर उन्होंने भी प्रचलित यौन वर्जनाओं के खिलाफ़ आवाज़ उठायी। ममता कालिया, मोना गुलाटी, मणिका मोहिनी जैसी कवयित्रियों की अनगिनत कविताएँ इस

दौरान प्रकाश में आयीं। मोना गुलाटी की कविता की कतिपय पंक्तियाँ लें-

"प्रत्येक पुरुष मुझे बैल नज़र आता है
और मैं उसे कोल्हू से बाँध
भाग आयी हूँ।"

परंपरागत स्त्री कविता से भिन्न स्वर ही इन कविताओं में मुखरित है।

सन् सत्तर के बाद एक साथ अनेक कवयित्रियाँ हिन्दी कविता के मंच पर उभर कर आयीं और अपनी विलक्षण और वैविध्यपूर्ण कविताओं से पारंपरिक स्वर से भिन्न अपना स्वर बुलंद किया। नारी अस्मिता तथा नारी मुक्ति से अनुप्राणित इनकी कविताओं ने हिन्दी कविता के क्षेत्र में नारीवाद के तेज स्वर को गुंजाया। कुसुम अंसल, अर्चना चतुर्वेदी, अनुभूति चतुर्वेदी, इंदु जैन, सुनीता जैन, अनामिका, रमणिका गुप्ता, कात्यायनी, निर्मला पुतुल आदि कवयित्रियों ने नारी उत्पीड़न तथा नारी-मुक्ति के विविध पहलुओं को निजी प्रतीकों, बिंबों के सहारे नितांत नूतन शैली में पाठकों के सामने रखा। महिला लेखन का धारदार स्वर बीसवीं शती के आखिरी दशकों तथा इक्कीसवीं शती के प्रारंभिक दशक की कविता में बुलन्द है।

रमणिका गुप्ता की पंक्तियाँ लें-

"मेरी मैं मर जाती है
और रह जाती है एक लाश
एक नारी
पुत्री से बहन और बहू तक की यात्रा तय कर
माँ की मंजिल तक पहुँचते - पहुँचते
मैं कई बार मर लेती हूँ
और किसी न किसी के कन्धे पर
ढोयी जाती रही हूँ।"

निर्मला पुतुल की पंक्तियाँ लें -

'तन के भूगोल से परे
एक स्त्री के मन की गाँठें खोलकर
कभी पढ़ा है तुमने उसके भीतर का खौलता
इतिहास
पढ़ा है कभी
उसकी चुप्पी की दहलीज़ पर बैठ
शब्दों की प्रतीक्षा में उसके चेहरे को?
अगर नहीं, तो फिर जानते क्या हो तुम
रसोई और बिस्तर के गणित से परे
एक स्त्री के बारे में।"

महिला-लेखन की एक सशक्त इस्ताक्षर हैं अनामिका, जिनकी स्त्रीवादी कविताएँ बहुचर्चित हुई हैं। "खुरदरी हथेलियाँ", 'दूबधान' जैसे नवीनतम कविता संकलनों की कविताएँ वस्तुतः महिला लेखन की संवेदनात्मक और शिल्पपरक सौद्धांतिकी गढ़ने में सहायक हैं।

(विभिन्न भारतीय भाषाओं में उपलब्ध महिला लेखन का तुलनात्मक अध्ययन यहाँ संगत हैं।)

कथासाहित्य

महिला-लेखन का सर्वाधिक सशक्त और बहुआयामी रूप कथा साहित्य में ही दृष्टिगत होता है। कहानी और उपन्यास दोनों विधाओं को महिला रचनाकारों ने समृद्ध बनाया है। महिला लेखन को एक अलग और खास पहचान देने में ये विधाएँ सक्षम निकली हैं।

कहानी

हिन्दी कहानी की शुरुआत करनेवालों में 'दुलाईवाली' की लेखिका बंग महिला का नाम आता है। बंग महिला (राजेन्द्रबाला घोष) की यह कहानी सन् 1907 में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई। 'कुसुम संग्रह' शीर्षक का उनका एक कहानी संकलन भी

प्रकाशित है। इस आरंभिक दौर में रचनारत अन्य महिला रचनाकार हैं जानकी देवी, शिवमोहिनी, गौरा देवी आदि। स्वतंत्रता-आंदोलन के दौरान रचनारत लेखिकाओं की कहानियों का कथ्य प्रमुखतया समाज में प्रचलित कुरीतियों व कुप्रथाओं पर केन्द्रित रहा।

इसके अनंतर स्वतंत्रता-प्राप्ति तक के कालखंड में उषादेवी मित्रा, सत्यवती मलिक, कमला चौधरी आदि ने अपनी कहानियों से महिला लेखन का विस्तार किया।

स्वातंत्र्योत्तर काल में हिन्दी कहानी क्षेत्र में नयी कहानी, सचेतन कहनी जैसे जो आन्दोलन आये इनमें कतिपय महिला रचनाकारों का भी योगदान रहा।

साठोत्तर काल : महिला कथा-लेखन के प्रौढ़ विकास का काल

साठोत्तर काल की कहानी लेखिकाओं की कई कहानियाँ अपनी संवेदना और शिल्प के वैशिष्ट्य के कारण चर्चा के केन्द्र में आ सकीं। कृष्णा सोबती की 'ऐ लड़की', 'मित्रो मरजानी', 'यारों के यार', मन्नू भण्डारी की 'यही सच है', उषा प्रियंवदा की 'वापसी' जैसी कहानियाँ सामाजिक जीवन की जीवंत अभिव्यक्ति के कारण विशेष चर्चित रहीं।

साठोत्तर काल कहानी क्षेत्र में महिला लेखन का सर्वाधिक प्रौढ़ काल रहा है। इस दौरान एक साथ कई महिला रचनाकार कहानी-रचना के क्षेत्र में सक्रिय हुईं। इन कहानीकारों ने जीवन के व्यापक चित्र के अंकन के साथ-साथ नारी जीवन की विसंगतियों और विडंबनाओं का स्त्री पक्षीय अंकन किया।

युगीन परिवेश के अनुकूल नारी-अस्मिता, नारी-मुक्ति जैसे सवाल भी इन लेखिकाओं ने उठाये।

वस्तुतः इनके द्वारा प्रभूत मात्रा में विरचित साहित्य के कारण ही हिन्दी में महिला लेखन प्रतिष्ठा प्राप्त कर सका है। ममता कालिया, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, प्रभा खेतान, सुधा अरोड़ा, नमितासिंह आदि इस दौरान रचनारत कहानी लेखिकाएँ हैं। ये रचनाकार इक्कीसवीं शती के इन दशकों में भी कहानी लेखन में सक्रिय हैं। मृत्युपर्यंत प्रभा खेतान भी रचना-क्षेत्र में सक्रिय रही थीं। इनके अलावा समकालीन हिन्दी कहानी क्षेत्र को समृद्ध करनेवाली अन्य लेखिकाओं में मृणाल पांडे, राजी सेठ, चन्द्रकांता, कमल कुमार, मेहरुन्निसा परवेज़, गीतांजलिश्री, मधु कांकरिया, सिम्मी हर्षिता, सुधा अरोड़ा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

उपन्यास

प्रारंभकालीन उपन्यास लेखिकाएँ

हिन्दी की प्रारंभकालीन उपन्यास लेखिकाओं में उषादेवी मित्रा, कंचन लता सब्बरवाल आदि के नाम महत्वपूर्ण हैं। नारी के पुत्री, पत्नी तथा मातृ रूपों की अभिव्यक्ति में उषादेवी मित्रा ने विशेष सफलता पायी है। इस दृष्टि से 'जीवन की मुस्कान', 'पिया', 'वचन का मोल' जैसे उनके उपन्यास उल्लेखन योग्य हैं।

स्वातंत्र्योत्तर काल

स्वतंत्रता पूर्व युग से शुरू होकर स्वातंत्र्योत्तर काल में भी लेखनरत महिलाएँ हैं - इन्दु बाली, रजनी पणिक्कर, चन्द्रकिरण सैनरिक्सा आदि। इन्होंने अपने उपन्यासों में नौकरीपेशा नारी की विविध समस्याओं के चित्र भी खींचे हैं।

साठोत्तर काल

साठोत्तर दशकों में कहानी की रचना में रत अनगिनत लेखिकाएँ उपन्यास-लेखन में सक्रिय हुईं। उपन्यास के विस्तृत दायरे में जीवन की वैविध्यपूर्ण तस्वीरों को उकेरने की गुंजाइश रही और महिला

रचनाकारों ने इसका खूब फायदा भी उठाया। मन्नू भण्डारी का 'आप का बंटी' उपन्यास साहित्य क्षेत्र में इतना चर्चित हो गया कि वह साहित्य-चर्चाओं का केन्द्रीय विषय बना। युगीन सामाजिक-राजनीतिक परिवेश से महिला रचनाकार किस प्रकार प्रभावित हो सकती हैं इसका दृष्टांत 'महाभोज' में मन्नु भण्डारी ने प्रस्तुत किया। ऐसे उपन्यासों ने समीक्षकों के इस आरोप का निराकरण किया कि महिला रचनाकार की पैठ केवल घर-परिवार और उसके इर्द-गिर्द ही है।

सन् सत्तर के बाद विरचित उपन्यासों ने नारी को केन्द्र में रखकर उससे जुड़ी विविध अनछुई समस्याओं का पर्दाफाश किया। नारी के दैहिक और मानसिक उत्पीड़नों के बेबाक चित्रण में इस कालखंड की लेखिकाएँ सफल रही हैं।

नारी-मुक्ति तथा नारी-अस्मिता को केन्द्र में रखकर कई उपन्यास इस दौरान विरचित हुए। पुरुष वर्चस्ववाले समाज में समान अधिकारों की प्राप्ति के लिए खुल्लं खुल्ला लड़नेवाली नारी का चित्रण ऐसे उपन्यासों में हुआ। कृष्णा सोबती की 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रो मरजानी', 'सूरजमुखी अंधेरे के', मृदुला गर्ग का 'कठगुलाब', चित्रामुद्गल का 'आवां', प्रभा खेतेन का 'छिन्नमस्ता' आदि स्त्री-अस्मिता के विविध आयामों को तलाशनेवाले उपन्यास हैं। अपने बोल्ड लेखन केलिए कृष्णा सोबती तथा मृदुला गर्ग विशेष ख्यात हैं।

उषा प्रियंवदा के 'पचपन खंभे लाल दीवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका', 'शेषयात्रा', 'अन्तर्वंशी' मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' मंजुल भगत के 'खातुल', 'तिरछी बौछार' नासिरा शर्मा के 'सात नदियाँ : एक समंदर', 'शाल्मली', 'ज़िन्दी मुहावरे' नमिता सिंह का 'अपनी सलीबें' अलका सरावगी का 'कलिकथा : वाया बाईपास' मृणाल पाण्डे के 'पटरंगपुर पुराण', 'रास्तों पर भटकते हुए' चन्द्रकांता का 'अंतिम साक्ष्य', 'ऐलान गली ज़िन्दा है', 'कथा सतीसर' जैसे उपन्यास महिला लेखन की उत्कृष्ट उपलब्धियाँ हैं।

एकांकी तथा नाटक

महिला लेखन में गणवत्ता की दृष्टि से सबसे कमज़ोर विधा नाट्य रचनाओं की रही है। जो कतिपय नाट्य रचनाएँ लेखिकाओं के द्वारा विरचित हुई हैं, वे यद्यपि गणवत्ता की दृष्टि से कम हैं किन्तु गुणवत्ता की दृष्टि से वे अपनी सानी नहीं रखतीं। ममता कालिया के पाँच एकांकियों का संकलन है 'यहाँ रोना मना है' जिसमें अभिशप्त नारी जीवन का मार्मिक रेखांकन है। मन्नू भण्डारी का पहला नाटक 'बिना दीवारों के घर' 1965 में प्रकाशित हुआ। 'महाभेज' शीर्षकवाले उनके बहुचर्चित उपन्यास का नाट्य रूपांतरण है 'महाभोज'। मृदुला गर्ग के तीन नाटक प्रकाशित हैं- 'एक और अजनबी' (1978), 'जादू का कालीन' (1993) तथा 'तीन कैदें' (1996)। मृणाल पाण्डे ने कई नाटक लिखे, उनमें प्रमुख हैं - 'मौजूदा हालत देखते हुए'(1979), 'जो राम रचि राखा' (1981), 'आदमी जो मछुआरा नहीं था' (1985), 'काजर की कोठरी' (1985), 'चोर निकलकर भागा', 'मुक्तिकथा' आदि।

'असुरक्षित', 'मुझे मत मारो' आदि गिरीश रस्तोगी की नाट्य कृतियाँ हैं। उन्होंने श्रीलाल शुक्ल के ख्यातिप्राप्त उपन्यास 'राग दरबारी' का 'रंगनाथ की वापसी' शीर्षक से नाट्य रूपांतरण किया है। हिन्दी की नाट्य रचयिताओं में कुसुम कुमार का महत्वपूर्ण स्थान है। 'ओम क्रांति' (1978), 'सुनो शेफाली' (1979), 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' (1982), 'संस्कार को नमस्कार' (1982) आदि आपकी चर्चित नाट्य कृतियाँ हैं।

आत्मकथाएँ

आत्मकथा-लेखन में विशेष सफलता प्राप्त कतिपय प्रमुख महिला रचनाकार और उनकी कृतियों की सूची नीचे दी जा रही है-

कुसुम अंसल - जो कहा नहीं गया (1996), कृष्णा अग्निहोत्री - लगता नहीं है दिल मेरा (1977), मैत्रेयी पुष्पा - कस्तूरि कुंडल बसै (2002), शीला झुनझुनवाला - कुछ कही कुछ अनकही, सुनीता जैन - शब्द कथा (2005) आदि । सन् 2005 में 'देहरि भई विदेस' शीर्षक से महिला रचनाकारों की आत्मकथाओं से चुने अंश तथा लेखिकाओं के आत्मकथ्य प्रकाश में आये हैं। राजेन्द्र यादव तथा उनके सहयोगियों ने उसका संपादन किया है।

जीवनी

महिला रचनाकारों ने जीवनियाँ भी लिखी हैं। 'प्रेमचन्द घर में' शीर्षक से प्रेमचन्द की पत्नी शिवरानी देवी द्वारा लिखित जीवनी, "सुमित्रानंदन पंत : जीवन और साहित्य" शीर्षक से पंत की बहन शांति जोशी द्वारा विरचित जीवनी आदि उल्लेखनयोग्य हैं। साहित्यकारों की पत्नियों द्वारा विरचित कुछ जीवनियाँ भी प्रकाश में आयी हैं, यथा-कमला सांकृत्यायन द्वारा रचित 'महामानव : महापंडित' (1995), सुलोचना रांगेय राघव द्वारा विरचित 'रांगेय राघवः एक अंतरंग परिचय' (1997), बिंदु अग्रवाल कृत भारत भूषण अग्रवाल की जीवनी 'स्मृति के झरोखे से' (1995) महिमा मेहता कृत 'उत्सव पुरुषः नरेश मेहता (2003), गायत्री कमलेश्वर कृत 'कमलेश्वर : मेरे हमसफर' (2005) आदि।

निबन्ध, संस्मरण, रेखाचित्र

निबन्ध, संस्मरण, रेखाचित्र जैसी विधाओं में भी महिला रचनाकारों ने अपनी लेखनी चलायी है। इन तीनों विधाओं को अपनी अनुपम रचनाओं से सर्वाधिक प्रोढ़ और समृद्ध किया है महादेवी वर्मा ने। उनकी शृंखला की कड़ियाँ, अतीत के चलचित्र, पथ के साथी आदि अत्यंत महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। जहाँ अन्यान्य लेखिकाओं द्वारा विरचित कहानी, उपन्यास जैसी विधाओं में नारी जीवन सम्बन्धी अतिरंजनापूर्ण वर्णन भी उपलब्ध होता है वहाँ महादेवी वर्मा द्वारा रचित साहित्य में नारी और नारी जीवन के बिलकुल यथार्थ और संतुलित चित्र ही उपस्थित हैं।

स्पष्ट है कि महिला रचनाकारों ने साहित्य की सभी विधाओं में अपनी सृजनात्मक प्रतिभा का प्रसार किया है। कविता, कहानी, उपन्यास तथा आत्मकथा के क्षेत्र में वे कुछ अविस्मरणीय एवं अनूठी रचनाएँ प्रदान कर भी सकी हैं। महिला लेखन को "मध्यवर्ग की ऊबी हुई औरतों का खाली समय में लिखा गया लेखन" कहकर उसे घटिया साहित्य कहा करनेवाले आलोचकों को मुँह तोड़ जवाब देने में ये रचनाएँ सक्षम निकली हैं। यही नहीं नयी और युवा पीढ़ी की अनेक लेखिकाओं को बेबाक लिखने की प्रेरणा भी उन्होंने दी है। महिला लेखन का वैशिष्ट्य इसमें है कि उसने न केवल स्त्री-जीवन की दुनियाँ को पाठकों के सामने खोलकर रखा है, बल्कि उसने बदलते युग-परिवेश के तहत भूमण्डलीकृत मानव की जटिल संवेदनाओं को भी संजीदगी के साथ पेश किया है। वैश्विक स्तर पर यह देखा जा सकता है कि महिला लेखन प्रगति के पथ पर है।

◆ पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग
पूर्व डीन, प्राच्य अध्ययन संकाय
केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनन्पुरम।

स्त्री सशक्तीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी कविता

♦ प्रो.एन.जी.देवकी

स्त्री अपार शक्ति की अधिष्ठात्री तो है ही। उसमें इच्छाशक्ति है, ज्ञानशक्ति है और क्रिया शक्ति है। मन की इच्छाशक्ति को ज्ञानशक्ति से समृद्ध करके उसे क्रियान्वित करने की अद्‌भुत क्षमता प्रत्येक नारी में सहज रूप से विद्यमान है। इच्छा और ज्ञान के क्रियान्वयन में देशकालानुसारी परिवर्तन अपेक्षित है। आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का प्रयोग जानना अपने को अद्यतन बनाए रखने केलिए अति आवश्यक है। सूचना संप्रेषण प्रौद्योगिकी का यथासंभव उपयोग किया जाना चाहिए। कंप्यूटर व स्मार्ट फोन में इंटरनेट के सहारे उपलब्ध ज्ञान पोर्टल्स का सदुपयोग प्रयोजनदायक है। वर्तमान समय में समाज और देश के शाक्तीकरण केलिए स्त्री-सशक्तीकरण अत्यन्त अपेक्षित है। भाषा और साहित्य के माध्यम से स्त्री-सशक्तीकरण को आवश्यक ऊर्जा मिलती है; लेकिन केवल साहित्य के माध्यम से स्त्री-सशक्तीकरण पूर्ण रूप से संभव नहीं। समाज में स्त्री की दशा समझते हुए साहित्यिक दिशाओं में आवश्यक गतिविधियाँ लानी हैं। इस पृष्ठभूमि में हिन्दी कविता को केन्द्रित करके स्त्री-सशक्तीकरण की दिशा में सोचना उपादेय होगा।

वस्तुतः हमारी सामाजिक संरचना की झलक काव्य में प्रतिबिंबित है। हिन्दी काव्य जगत् में सगुण कृष्णभक्ति काव्य में ही सबसे पहले स्त्री की अस्मिता को पूर्ण प्रतिष्ठा मिली। नाथद्वारा के श्रीनाथ मंदिर में अष्टयाम सेवा का विधान है। बालक कृष्ण की उपासना के संदर्भ में स्त्री-चरित्र के सबसे उदात्तरूप 'जननी' व मातृत्व की अभिव्यक्ति हुई, जो हिन्दी कविता में सूरदास के पहले थी ही नहीं। सूर के जितने भी वात्सल्य के पद हैं, उनमें ऐसा कोई भी पद नहीं है जिसमें 'माँ' शब्द न आया हो। उदाहरण केलिए

"मैया मोरि मैं नहीं माखन खायो।"

X X

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।'

X X

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।"

X X

मैया मैं तो चांद खिलौना लइहो...।"

'माँ' शब्द इतनी बार प्रयुक्त हुआ है कि पहली बार हिन्दी काव्य में स्त्री की अस्मिता को पूर्ण स्थान मिला।

इसके उपरान्त पुष्टिमार्ग में शृंगार संबंधी पदों में राधा और गोपियाँ हैं। स्त्री के इस दूसरे रूप का वर्णन सामंती युग के परिप्रेक्ष्य में हुआ है। सूरदास का स्थितिकाल अकबर के शासनकाल का समय था। उस समय हमारे विधि-विधान में स्त्री को घर की चौखट के बाहर कदम रखने की अनुमति तक नहीं थी। ऐसे सामंती युग में सूरकाव्य में स्त्री का प्रेमिका रूप गौपियों और राधा के माध्यम से अपने उत्कृष्ट रूप में व्यक्त होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी सूरदास की रासलीला के संबन्ध में लिखते हैं कि यह रासलीला नहीं, जीवन-उत्सव है। सूर की ये गोपियाँ पक्षियों की तरह स्वच्छन्द

हैं। सूर इस रासलीला के माध्यम से उस स्वच्छन्द समाज का स्वप्न देख रहे थे जिस समाज का स्वप्न अंग्रेज़ी कवि शेली ने देखा था। तत्कालीन सामन्ती माहौल में सूर ने ऐसी गोपियों का चित्र खींचा है, जो कृष्ण की बाँसुरी बजते ही सारे बंधनों को तोड़कर भागती हुई कृष्ण के पास चली जाती हैं और स्वच्छन्द रास में लीन हो जाती हैं। हर गोपी के साथ एक कृष्ण है। यह पूरा जो रास है, स्त्री के एक नये बिंब को हमारे सामने प्रस्तुत करता है। यशोदा माता को तो कान्हा के मुँह में ब्रह्माण्ड दर्शन का सौभाग्य मिला। यहाँ तक कि माँ के रूप में स्त्री को मुक्त करते हुए कृष्ण का जन्म हुआ था।

रामभक्त कवि तुलसीदास के व्यक्ति रूप को हमें नज़र-अंदाज़ नहीं करना चाहिए। पत्नी रत्नावली के उपदेश से गोस्वामीजी का विरक्त होना और भक्ति की सिद्धि प्राप्त करना प्रसिद्ध है। तुलसीदास जी अपनी पत्नी पर इतने अनुरक्त थे कि एक बार उसके मायके चले जाने पर वे बाढ़ी नदी पार करके उससे जाकर मिली। उस समय रत्नावली ने ये दोहे कहे-

"लाज न लागत आपको दौरे आएहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं ताथ।।
अस्थि चर्ममय देह मम तामें जैसी प्रीति।
तैसी जौ श्रीराम महँ होति न तौ भवं भीति।।"

यह बात तुलसीदास जी को ऐसी लगी कि वे तुरंत काशी आकर विरक्त हो गए। रत्नावली से बिछुड़ने की पीड़ा कहीं न कहीं उनके अवचेतन मन में विद्यमान थी। 'रामचरितमानस' तो हिन्दी भाषियों का धर्म ग्रंथ है। 'रामचरितमानस' की रचना जब तुलसी समाप्त करते हैं तब उसके अंतिम दोहे में वे निवेदन करते हैं-

"कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिसि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।।"

अर्थात् कामी पुरुष को जैसे कामिनी प्रिय लगती है और जिस तरह लोभी को धन प्यारा लगता है, हे श्रीराम, उसी भाँति मुझे आप निरन्तर प्रिय लगें।'

हिन्दी काव्य के इतिहास में मीराबाई ख्याति प्राप्त पहली स्त्री रचनाकार हैं। मीरा का राजमहल के बाहर आना उनके विद्रोह का लक्षण है। स्त्री-सशक्तीकरण के संदर्भ में बराबर कवयित्री मीरा का नाम लिया जाता है। मीरा वह पहली स्त्री थीं जो चली आ रही परंपराओं से बाहर आने का साहस जुटा सकीं। पति के मरने के बाद मीरा सती नहीं हो जातीं बल्कि वे शृंगार करती रहीं, घुंघरू बाँधकर नाचती रहीं - ये सारी बातें मीरा के विद्रोह के रूप में उठाई जाती हैं। भगवान कृष्ण को मीरा ने प्रेमी, पति और प्रभु के रूप में अपनाया है।

आधुनिक काल में नव जागरण के समय से स्त्री की भूमिका को, उनकी शिक्षा को महत्वपूर्ण माना जाने लगा था। भारतेन्दु से लेकर समकालीन रचनाकार तक इस विषय में सकारात्मक दृष्टि रखते आए हैं। मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, प्रसाद, पंत, निराला जैसे उल्लेखनीय साहित्यकार स्त्री-सशक्तीकरण के समर्थक ही रहे हैं। प्रसाद जी 'कामायनी' के 'इड़ा सर्ग' में लिखते हैं-

"तुम भूल गए पुरुषत्वमोह में
कुछ सत्ता है नारी की।"

स्त्री-पुरुष में प्रकृतिगत भेद तो है ही, लेकिन मनुष्यकृत भेद को अस्वीकार करना है। समकालीन संदर्भ में उदय प्रकाश, बदरीनारायण, आलोक धन्वा, राजेश जोशी जैसे कवियों ने स्त्री संबन्धी प्रश्नों पर गौर से विचार किया है।

समकालीन संदर्भ में स्त्री-मुक्ति और स्त्री-सशक्तीकरण से संबन्धित कविता तो लिखी जाती है। पर इस समय हमें गौर से सोचना है कि स्त्री-सशक्तीकरण की आवश्यकता समाज में है या साहित्य में। जब यह मुक्ति समाज में चरितार्थ हो तभी उसकी सफलता है। इसकेलिए बाधक तत्व हैं पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था और सदियों से समाज में रूढ़मूल संस्कार। विदित है कि भारत में स्त्री-सशक्तीकरण पाश्चात्य नारीवाद का पल्ला पकड़कर नहीं, बल्कि भारतीय परिवेश के अनुरूप परिवर्तन से ही संभव है। महादेवी वर्मा की 'शृंखला की कड़ियाँ' शीर्षक पुस्तक से इस दिशा में बहुत आलोक मिल सकता है। क्योंकि महादेवी वर्मा पश्चिम के नारीवाद से आक्रान्त नहीं हैं, वे अपने भारतीय संदर्भ में चीज़ों को देखती हैं। महादेवी जी ने लिखा है कि अपने कर्तव्य को पहचानना है। अब स्थिति यह है कि समस्या स्पष्ट नहीं है। पहले मुद्दे को समझना है, फिर समाधान ढूँढ़ना है। अब समस्या पुरुष बनाम स्त्री बन गयी है। यह ठीक नहीं, गलत है। इससे प्रकृति का संतुलन ही बिगड़ जाएगा। मुक्ति बंधन से ही संभव होती है। समस्या यह है कि स्त्री-पुरुष के संबन्ध में जो विकृतियाँ आई हैं पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था के कारण उन विकृतियों से हम कैसे टकरायें? और ऐसा रास्ता निकालकर एक दूसरे के व्यक्तित्व का सम्मान करते हुए समरस का जीवन संभव हो, इसलिए प्रश्न समस्या को स्पष्ट रूप में समझने का है। स्त्री-सशक्तीकरण से तात्पर्य है स्त्री के कमज़ोर पक्ष को मज़बूत बनाना। पुरुष का दायित्व है कि वह स्त्री को अपने समकक्ष लाने में कार्यरत रहे, ऐसा करने से ही स्त्री-सशक्तीकरण सार्थक और सफल सिद्ध होगा। जब तक स्त्री और पुरुष स्वस्थ मन से आगे नहीं बढ़ते तब तक स्त्री-सशक्तीकरण पूर्ण नहीं होगा।

♦ पूर्व प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
कोच्चिन विश्वविद्यालय।
ईशावास्यम,
पुलिमुकल् रोड्,चङ्ङम्पुषा नगर (पि.ओ)
कोच्चि - 682 033, केरल।

सही उत्तर चुनें

1. हिन्दी कहानी साहित्य के आरंभकाल की लेखिका कौन है?
(अ) उषादेवी मित्रा (आ) महादेवी वर्मा
(इ) शिवरानी (ई) बंग महिला

2. ममता कालिया को 'व्यास सम्मान' प्राप्त उपन्यास कौन - सा है?
(अ) दुखम सुखम (आ) एक ज़मीन अपनी
(इ) आवा (ई) गिलगिडु

3. कृष्ण सोबती का प्रथम उपन्यास कौन-सा है?
(अ) मित्रो मरजानी (आ) सूरज मुखी अंधेरे के
(इ) डार से बिछुड़ी (ई) दिलो दानिश

4. मन्नू भंडारी का राजनीतिक उपन्यास कौन - सा है?
(अ) आपका बेटी (आ) स्वामी
(इ) कलवा (ई) महाभोज

5. 'आँखों की दहलीज़' की लेखिका कौन हैं?
(अ) मृदुला गर्ग (आ) मेहरुन्निसा परवेज़
(इ) प्रभा खेतान (ई) सूर्यबाला

सही उत्तर

1.ई 2.अ 3. इ 4.ई 5.आ

आर्थिक रूप में नारी सशक्तिकरणः 'छिन्नमस्ता' में

♦ डॉ. लीलाकुमारी अम्मा.एस

आधुनिक हिन्दी साहित्य की लेखिकाओं में प्रभा खेतानजी का सर्वप्रमुख स्थान है । उनका रचना-संसार व्यापक और बहुआयामी है। सन् उन्नीस सौ तिरनवे में प्रकाशित 'छिन्नमस्ता' नारी जीवन की नियति और त्रासदी की प्रामाणिक दस्तावेज़ कही जा सकती है। उपन्यास की नायिका प्रिया के जीवन के अनेक प्रसंग लेखिका ने अपने स्वानुभवों को दृष्टि केन्द्र में रखकर 'छिन्नमस्ता' का सृजन किया है। प्रिया माँ के द्वारा उपेक्षित एवं अपमानित युवती है। उसका विवाह सफल व्यवसायी नरेन्द्र से होता है, जो अपने व्यवसाय में अत्यधिक व्यस्त रहता है। पति के लिए प्रिया वासनामूर्ति का उपकरण मात्र है। फलस्वरूप प्रिया स्वतंत्रत व्यवसाय करने का निर्णय लेती है। इस निर्णय के साथ दाम्पत्य जीवन में कटुता भरी होती है। लेखिका ने इस उपन्यास में यह दिखाने का प्रयास किया है कि संपन्न मारवाडी परिवार में भी नारी सुखी नहीं है। वह उपेक्षा, अपमान, ईर्ष्या, गुलामी में ही जीवन - यापन करने केलिए विवश होती है। यह नारी जीवन की त्रासदी है।

नारी सशक्तिकरण

नारी सशक्तिकरण केअन्तर्गत महिलाओं से जुड़े सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और कानूनी मुद्दों पर संवेदनशीलता और सरोकार व्यक्त किये जाते हैं। "नारी सशक्तिकरण भौतिक और आध्यात्मिक, शारीरिक या मानसिक सभी स्तर पर महिलाओं में आत्मविश्वास पैदाकर उनको सशक्त बनाने की प्रक्रिया है।"[1] अर्थात् स्त्री-सशक्तिकरण से तात्पर्य है स्त्री का अपने व्यक्तित्व और अपनी क्षमता को विकसित करना। उसमें निर्णय लेने की क्षमता का निर्माण करना। उसमें आत्मविश्वास जाग्रत करना। यह क्षमता आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक और राजनीतिक दृष्टि से होना आवश्यक है। अंग्रेज़ी में इसे 'Women Empowerment' कहा जाता है।

आर्थिक रूप में नारी-सशक्तिकरणः छिन्नमस्ता में

अर्थ वह धुरी है जिस पर व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का जीवन निर्भर करता है। भारतीय मनीषियों ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष- ये चार पुरुषार्थ माने हैं, जिनमें धर्म के साथ अर्थ की महत्ता स्वीकार की गयी है। परिवार की नियामक स्त्री होती है। वही परिवार के दैनिक आय -व्यय का लेखा- जोखा रखती है। परिवार को आर्थिक दृष्टि से सक्षम बनाने हेतु वह स्वयं नौकरी या व्यवसाय क्षेत्र में पदार्पण करती है। मानव के विकास केन्द्र में आर्थिक व्यवस्था एक आधारभूत तत्व है, जो व्यक्ति का नियन्ता है, किन्तु इसके बावजूद नैतिक सामाजिक, सांस्कृतिक आदि व्यवस्थाओं में पूरे परिवर्तन की ज़रूरत है, जिसके बदले बिना स्त्री का आविर्भाव संभव नहीं होगा।"[2]

प्रभा खेतान के 'छिन्नमस्ता' उपन्यास की प्रिया ने यह अनुभव किया कि नारी तभी स्वतंत्र हो सकती है जब वह आर्थिक दृष्टि से सक्षम है। 'छिन्नमस्ता' की

प्रिया स्वयं आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनना चाहती है। इसलिए वह स्वतंत्र व्यवसाय प्रारंभ करती है। उसका पति नरेन्द्र यह नहीं चाहता की प्रिया व्यवसाय करे। अतः जितना रुपया चाहिए उतना देने को तत्पर है। शर्त केवल यही है कि प्रिया स्वतंत्र व्यवसाय न करे। परन्तु नारी के स्वतंत्र अस्तित्व के लिए व्यवसाय करना आवश्यक है। यह प्रिया का दृष्टिकोण है। व्यवसाय से उसे जीवन का मकसद मिल गया है। उसी के शब्दों में "आज मेरा व्यवसाय मेरी आयडेंट्टी है। यह आये दिन विदेश की उड़ान... यह मेरी ज़िन्दगी के कैनवास को बड़ा करती है। नित नये लोगों से मिलना-जुलना, जीवन के कार्य जगत को समझाना। मुझे ज़िन्दगी उद्देश्यहीन नहीं लगती।"[3] नरेन्द्र के विरोध पर प्रिया का तर्क है कि जब वह रुपया कमाता है, रयर व्यवसाय करता है, तो उसे पत्नी के रुपये से जलन होती है। वास्तव में नरेन्द्र नारी की आर्थिक स्वतंत्रता का विरोधी है। प्रिया को यह सन्तोष है कि आर्थिक दृष्टि से वह संपन्न होने के कारण उसे किसी के समक्ष रुपयों के लिए लाचार नहीं होना पड़ेगा। उसी के शब्दों में "मैं अहंकार नहीं कर रही, पर आज मैं जो चाहे जो खर्च करूँ मुझे उनका हिसाब नहीं देना पड़ता... उस करोड़पति के घर में मुझे पैसे - पैसे का हिसाब देना पड़ता था।"[4] आर्थिक स्पर्धा के कारण नरेन्द्र और प्रिया का अनमेल अपनी चरमसीमा पर पहुँचता है। नरेन्द्र प्रिया के व्यवसाय को चौपट करना चाहता है। तब प्रिया उसे चुनौती देती है कि - यदि वह उसके व्यापार को नष्ट करने का प्रयास करेगा तो वह भी उनके इनकम टैक्स. सेल टैक्स, एकसाइज़ टैक्स आदि बखेड़ों का पर्दाफाश कर देगी।

इतिहास साक्षी है कि स्त्री को दो मोर्चे पर संघर्ष करना पड़ा है। एक है घर और दूसरा सेक्स। 'छिन्नमस्ता' उपन्यास की निरंतर शोषित प्रिया इन दोनों मोर्चों पर हो रहे शोषण के विरुद्ध चुनौती बनकर, उठ खड़ी होती है। अरविन्द जैन के शब्दों में "छिन्नमस्ता को उच्चवर्गीय संयुक्त परिवार के विषैले और दमघोंटू वातावरण से निकालकर, अपने व्यापार और पूँजी कमाने, बढ़ाने के बाद व्यक्तित्व के विकास या बौद्धिक और मानसिक विकास केलिए हर समय साहस और प्रयास करती 'विद्रोही' स्त्री की आत्मकथा या आत्मविश्लेषण के रूप में ही देखा जा सकता है।"[5]

'छिन्नमस्ता' उपन्यास की कस्तूरी (प्रिया की माँ) अपने पति की मृत्यु के पश्चात् केवल आँसू बहाती नहीं बैठती । अपितु सशक्तिकरण की प्रवृत्ति अपनाते हुए आर्थिक स्थिरता प्राप्त करती है। वह अपनी ज़मीन पर मकान बनवाती है, जिससे उसे दस हज़ार रुपए महीना किराया मिलता है। माँ ने अपनी क्षमता का परिचय दिया और परिवार के आर्थिक दायित्व को संभाला। प्रिया मानती है कि "अम्मा मज़बूत नहीं रहती तो चाचा लोग हमें रास्ते पर बैठा देते।"[6] प्रिया परंपरागत नारी के समान सब कुछ सहते हुए मूक रहना नहीं चाहती। वह स्त्रियों पर होनेवाले अत्याचार के विरुद्ध आक्रोश व्यक्त करती है- "नहीं, मुझे अम्मा की तरह नहीं होना, कभी नहीं। भाभी की घुटन भरी ज़िन्दगी की नियति मैं कदापि स्वीकार नहीं कर सकती। मैं जीवन को आंसुओं में नहीं ढ़ो सकती। क्या एक बूँद आँसू में ही स्त्री का सारा ब्रह्मांड समा जाए? क्यों? किसलिए? रोना केवल रोना आँसुओं का समुंदर आँसूओं का दरिया और तैरते रहो तुम।"[6] निश्चित ही उसका यह

प्रक्षोभ उत्तरशती की नारी का सशक्तिकरण है। आधुनिक विचारों से प्रेरित प्रिया के मन में कई प्रश्न उभरते हैं। वह जानना चाहती है कि पुरुष हमेशा जीतना ही क्यों चाहता है? स्त्री - पुरुष का संबंध क्या मालिक और गुलाम का है? भोक्ता और भोज्य का है। जब नरेन्द्र प्रिया की व्यवसायिक सफलता से उस पर व्यंग्य करता है तब वह उससे कहना चाहती है कि इस सफलता के लिए उसे आर्थिक परिश्रम करना पड़ा है, जबकि नरेन्द्र को सब कुछ बना- बनाया मिला है- 'नरेन्द्र तुम ही कौन बड़े व्यक्ति हो? पापा के कमाये हुए धन में करोड़ - दो करोड़ जोड़ दिया और लोगों के बीच तीरमारखाँ बने फिरते हो ? मैं ने तो गली- गली घूमकर अपना बड़ा काम किया है। तुम कर पाओगे ? क्या तुम्हारी सफेद सफारी सूट पर कीचड़ का दाग नहीं लग जाएगा? तुमें इस एयरकंडीशेड मर्सीडिस में बैठ-बैठ पसीना आता है, अपनी सैम्पलों का बक्स लिए मैं किस- किस जगह घूमी हूँ।"[7] आर्थिक दृष्टि से संपन्न होने के कारण उसमें आत्मविश्वास जाग्रत हुआ है। उसे लगता है कि पति नरेन्द्र और उसके परिवार को छोड़ देने को कोई मलाल नहीं है। वह निराश, हताश और कुंठाग्रस्त होकर नहीं जीना चाहती । उसे यह ज्ञात हो चुका है कि आर्थिक स्वावलंबी स्त्री को आदर ही प्राप्त होता है। वह पति के आश्रय में न रहकर स्वतंत्र रूप से नौकरी या व्यवसाय करना चाहती है और सफल भी होती है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि बिना आर्थिक सशक्तिकरण के स्त्री शाक्तीकरण की कल्पना बेमानी है। कारण है कि महिलाओं की प्रत्येक व्यथा-कथा के मूल में आर्थिक निर्भरता है। कहने को महिला गृहलक्ष्मी है, लेकिन आर्थिक दशा की भिखारिणी है। वह सबसे बड़ी उद्यमी है। लेकिन उसका उद्यम गिना नहीं जाता। स्पष्ट है कि महिलाओं का सशक्तिकरण तभी सन्तोषजनक होगा जब से वे आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बनेंगी। प्रभा खेतानजी 'छिन्नमस्ता' उपन्यास द्वारा यह उपदेश देना चाहती हैं कि स्वावलंबी होकर स्वयं मुक्ति आर्जित करें। हिन्दी कथा साहित्य में 'छिन्नमस्ता' उपन्यास नारी-सशक्तिकरण के विषय में 'मील का पत्थर' साबित हुआ है।

संन्दर्भ - ग्रंथ

1. स्त्रीवाद - डॉ. वैशाली देशपांडे, पृ.सं. 114; अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. महिला रचनाकारों के उपन्यासों में नारी सशक्तिकरण, डॉ. स्वाति नरखेडे, पृ.सं. 57; अलका प्रकाशन, कानपुर।
3. नारी सशक्तिकरण - डॉ. स्वाति नरखेडे, पृ.सं. 43; नाशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
4. छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, पृ.सं. 43; अपर्णा प्रकाशन, कानपुर
5. वही, पृ.सं. 75
6. वही, पृ.सं. 98
7. अक्षर पर्व, पृ.सं. 24; मार्च-अप्रैल, 2014

♦ पूर्व अध्यक्षा,
हिन्दी विभाग,
एस.एन.कॉलेज, कोल्लम।

स्त्री मुक्ति की लम्बी दास्तानः प्रभा खोतान के उपन्यास

♦ डॉ.रॉय जोसफ

महिला उपन्यासकारों की रचना के क्षेत्र में यथार्थ की अनुभूति को रचनाबद्ध करनेवालों में प्रभा खेतान अन्यतम लेखिका हैं। रचना के यथार्थ की स्थिति उपन्यासकारों के अपने आत्मसंघर्ष पर निर्भर होती है। प्रभा खेतान बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक के उपन्यासकारों की सूची में अपनी एक अलग पहचान रखती हैं। प्रभा खेतान ही प्रथम लेखिका हैं, जिन्होंने वैश्विक घरातल पर व्यापार करती स्त्री के संघर्ष को मुखर किया है। इसके साथ ही परंपरा और आधुनिकता के बीच पिसी मारवाड़ी स्त्री के मन के सशक्त दृश्य अपने उपन्यासों में प्रस्तुत कर एक अनूठा सूजनात्मक आयाम जोड़ा है। उन्होंने अब तक आठ उपन्यास लिखे हैं। उनके तीन उपन्यास 'आओ पेपे घर चले' 'आग्निसम्भवा' एवं 'एड्स' अमरीकी, चीन, कोरिया इत्यादि देशों की नारियों के जीवन की त्रासदियों का वर्णन करते हुए यह बतलाने की चेष्टा करती हैं कि पारिवारिक विघटन और स्त्री-पीड़ा सामयिक विषय है। 'छिन्नमस्ता', 'पीली आँधी', 'अपने-अपने चेहरे', 'स्त्री पक्ष' एवं 'तालाबन्दी' उपन्यासों में बदलते परिवेश में मारवाड़ी समाज के संघर्ष और आत्मविश्वास के साथ स्त्री-पुरुष दोनों की व्यथा-कथा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

प्रभाजी का संपूर्ण कथा-साहित्य उनके निजी जीवन की कथा कहता है। "आओ पेपे घर चलें', 'छिन्नमस्ता', 'अग्निसंभवा', 'तालाबंदी', 'पीली आंधी' या 'अपने-अपने चेहरे' कोई भी उपन्यास हो, सभी में लेखिका की उपस्थिति का जीवंत अहसास होता है, ये उपन्यास आत्मकथात्मक अधिक प्रतीत होते हैं। शशिकला त्रिपाठी ने इसे रेखांकित करते हुए लिखा है - "प्रभाजी का लेखन आनुभूतिक होता है। वे मुक्तिबोध की तरह पहले जीवन में सच का साक्षात्कार करती हैं तब साहित्य में। यही वजह है कि उनकी हर रचना आत्मसाक्षात्कार की एक प्रक्रिया मालूम होती है।"[1] प्रभाजी के उपन्यास अर्थ और सेक्स की धुरी पर केन्द्रित हैं। उन्होंने वैश्विक धरातल पर बदलते युग-बोध के साथ मारवाड़ी एवं विदेशी स्त्री की समस्याओं को मुख्य विषय बनाते हुए अपने कथा साहित्य का अनूठा सृजन किया है। उनकी स्त्री-पात्र अपने परिवेश में जीवन के मैदान में जूझते-लड़ते दिखाई देती हैं।

प्रभा खेतान के अधिकतर उपन्यासों में संयुक्त परिवार का चित्रण हुआ है। सत्ताधारी पुरुष का संपत्ति पर वर्चस्व होने के कारण स्त्रियाँ आपस में कटुता, वैमनस्य तथा घरेलू दम घुटनेवाले वातावरण में जीने केलिए विवश होती हैं। भय के पहाड़ तले ये महिलायें और अधिक रुपये बटोरने की लालसा में सारे मानवीय रिशतों को तोड़ती लूट और खसोट करती हैं। प्रभाजी ने नारी-विमर्श पर लिखकर महिला लेखन के क्षेत्र में अपार प्रतिष्ठा प्राप्त की है। उन्होंने वैश्विक धरातल पर स्त्री की सार्वजनिक भूमिका को दिखाकर स्त्री को ऊँचा स्थान देने में अहम भूमिका निभाई है। उन्होंने अपने उपन्यासों में नारी शोषण के सभी पहलुओं का सफल अंकन किया है।

प्रभा खेतान के उपन्यास स्त्री-मुक्ति की लम्बी दास्तान है। स्त्री-शोषण दो प्रकार के होते हैं। स्त्री द्वारा स्त्री का शोषण और पुरुष द्वारा स्त्री का शोषण। इन दो

रूपों को चार भागों में बाँटा जा सकता है - श्रम का शोषण, आर्थिक शोषण, सेक्स का शोषण और रिश्तों का शोषण। यदि हमें श्रम का उचित मूल्य न मिले तो उसे हम श्रम का शोषण कह सकते है। 'छिन्नमस्ता' उपन्यास में दाई माँ प्रिया की देखभाल केलिए नियुक्त की गयी थी। दूसरी ओर उसे घर के अन्य काम भी करने पड़ते हैं। एक बार दाई माँ ने तपते बुखार में उठकर सब केलिए खाना पकाया। उसे निन्दा के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला। प्रिया के प्रति घरवालों का कटु व्यवहार देखकर वह घर छोड़कर चली जाती है। इससे घर की सभी महिलाएँ खुश होती हैं। जाते समय उसे कोई नहीं रोकता है और न कोई उसे रुपये देता है। प्रिया अपने सोने का चेन दाई माँ को देती है, लेकिन दाई माँ उसे अस्वीकार करती है। उसका जीवन हवन कुंड़ में स्वाहा होती समिधा के समान हो जाता है।

'अग्निसम्भवा' की आई वी (चानी) चमडे के कारखाने में काम करती है। महीने में चालीस-पचास डॉलर मिलने केलिए उसे सुबह आठ बजे से रात आठ बजे तक काम करना पड़ता था। इतने कम डॉलरों से उसका काम नहीं चलता था। उसे कई बार ओवर टाइम भी करना पड़ता था। फिर भी उसे कई प्रकार की आर्थिक विषमताओं में जीना पड़ता है। प्रभाजी ने श्रम के शोषण को वैश्विक घरातल से जोड़ दिया है। वे यह बतलाने की चेष्टा करती हैं कि शोषक और शोषित वर्ग पूरे विश्व में व्याप्त हैं। श्रम के शोषण की त्रासदी जिस मायने में प्रभा खेतान के उपन्यासों में अभिव्यक्त है, उसी मायने में दूसरी उपन्यास - लेखिकाओं की रचनाओं में कहीं दुर्लभ है।

प्रभाजी के उपन्यासों में आर्थिक शोषण का चित्रण पर्याप्त मात्रा में अंकित हुआ है। उनके उपन्यासों में संयुक्त पारिवार एवं व्यापार जगत का वर्णन प्रायः अधिक हुआ है। 'आओ पेपे घर चले' की कैथी आर्थिक स्वतंत्रता को जीने की पहली शर्त मानती है। पति ब्रैडी उसे कमाने नही भेजता। कैथी के अनुसार बाहरी दुनिया में काम करने से स्त्री-चेतना मज़बूत होती है। कैथी पति का धन उपव्यय कर मस्ती मारती है। वह दोस्तों का जमघट बनाकर पति पर दबाव डालना चाहती है। वह अपनी कार्रवाइयों के ज़रिए पति का आर्थिक शोषण करती है। लेकिन नौकरी पाने के उद्देश्य से वंचित रहती है। आखिर कैथी पति-परित्याग कर स्वतंत्र हो जाती है तथा ज़िन्दगी का उन्मुक्त भोग करती है।

'स्त्री पक्ष' उपन्यास में एक तांत्रिक बाबाजी है। वह महिलाओं को फुसलाकर उनसे भारी फीस वसूल करता है। पढ़ी-लिखी समाज की महिलाएँ भी बाबाजी का परामर्श लेने केलिए पहुँच जाती थी। वे घंटों कतार में खड़ी होकर गंडे, तावीज़, मोती की अंगूठियाँ आदि के दाम चुकाती थीं। कभी-कभी चुटकी भर भस्म देकर बाबाजी हज़ारों रुपये कमा लेते थे। मनचाहा फल न पाने पर जब नारियाँ शिकायत करती तो बाबाजी कहते हैं - "तुम्हारी कुण्ड़ली में विष भोग है, इसलिए तुमें पति से सुख नहीं मिल रहा। अब की शिवरात्रि पर व्रत रखना और शिवजी पर एक भारी सोने का सर्प बनवाकर चढ़ा देना, तुम्हारा काम हो जाएगा।"[2]

प्रभाजी के उपन्यासों में सेक्स के शोषण का चित्रण अधिक मात्रा में हुआ है। 'छिन्नमस्ता' उपन्यास की प्रिया उनके प्रोफेसर के निमंत्रण को प्यार समझती है। वह प्रोफेसर के पीछे उसके घर चल पड़ती है। दोनों के बीच काम सम्बन्ध बना रहता है। अनेक बार यह सिलसिला चलता रहा। एक दिन प्रोफेसर की पत्नी ने दरवाज़ा खोला तो प्रिया को सारी बातें समझ में आ

गयीं। प्रोफेसर ने प्रिया का शारीरिक शोषण कर उसे घोखा दिया था।

'अग्निसम्भवा' की आई.वी. प्रभाजी को होगकोण की 'लाल गलियों' का परिचय कराती है। आई वी का कथन है कि वियटनाम युद्ध खतम होने के बाद उस इलाके की वेश्यायें पुसी कैट नाम से पुकारी जाती हैं। उनसे मिलने कई अमेरिकन सैनिक हर महीने आते रहते है। उनके बच्चे भी पैदा हुए हैं। जब युद्ध चलता था तब प्रत्येक जहाज़ में हज़ारों सैनिक उतरते थे। उस समय वहाँ दलाल खड़े रहते थे। लाल गली में आनेवाला सैलानी सुबह चार से पहले नहीं निकलता और आई वी की टैक्सी का मीटर चालू रहता। टाक्सी-किराये के रूप में दो सौ डॉलर देनेवाला यात्री गली की लड़कियों को एक रात केलिए पचास डॉलर से अधिक नहीं देता। लेखिका ने सेक्स के क्षेत्र में होनेवाले अमानवीय व्यवहार एवं शोषण का भयावह चित्र खींचा है।

शोषण की प्रक्रिया में प्रभाजी ने रिश्ते की गहराई में विचार किया है। प्रत्येक रिश्ता कुछ देता है और बदले में कुछ छीन भी लेता है। वह रिश्ता पति-पत्नी का हो या पिता-पुत्री, भाई-बहन या परिवार के अतिरिक्त दोस्ती का हो। प्रायः इस छल से स्त्री आहत होती है। "'आओ पेपे घर चले' की एलिजा अपने पति से बेहद प्यार करती है वह उसे खोना नहीं चाहती। वह अपने दाम्पत्य जीवन को सफल एवं संपूर्ण बनाए रखना चाहती है। उसका पति डॉ.डी. अपनी पत्नी की भावनाओं का आदर नहीं करता। वह एलिज़ा के आत्मसमर्पण का फायदा उठाकर उसे अधिक रुलाता है। वह क्लारा ब्राउन से प्रेम करता है। पत्नी के सामने उसके साथ नृत्य करते वह एलिज़ा को अधिक आघात पहुँचता है"[3] क्लारा ब्राउन डॉ.डी की बाँहों में खिल उठी थी। मिसेज़ डी मुस्कुराने के सारे प्रयासों के बावजूद लारेन्स की बाँहों में रोती हुई सी लगी। पति को क्लारा ब्राउन के साथ स्विमिंग पूल में डुबकी लगाते देखकर वह फूट-फूटकर रो पड़ती है। इस प्रकार पति के अमानवीय व्यवहार से आहत अनेक नारियों का चित्रण प्रभाजी के उपन्यासो में निहित है।

आलोचक परवीन मलिक के अनुसार -"स्त्री की आस्मिता का प्रश्न, आधुनिक नारी मन की चुनौतियों को उन्होंने अपनी लेखनी का मुद्दा बनाकर पाठक के मानस को झिंझोड़ा हैं। इसमें प्रश्नों के बवंडर भी उठाए हैं और अपने समाधानों से उन्हें शान्त भी किया है। यही कारण है कि उनमें रोचकता बनी रही है।"[4] प्रभाजी का लेखन अनुभूतिपरक होता है। कोई भी लेखन तभी प्रभावित करता है, जब रचनाकार अपने यथार्थ, परिचित परिवेश, अनुभवों और भाषा को रचना में अनुभूतिक दंग से प्रस्तुत करता है। प्रभाजी ऐसा ही करती हैं। इसलिए उनकी रचनाऐं सार्थक बनी रहती हैं।

इनके उपन्यास 'छिन्नमस्ता' और 'पीली आँधी' को बहुत सराहना मिली। ये उपन्यास 'नारी विमर्श' की दास्तानें हैं। ये चर्चित उपन्यास स्त्री के शोषण-उत्पीड़न व संघर्ष के जीवन्त वर्णन हैं। इसके अलावा 'पीली आँधी'अपने में एक विशिष्ट सराहनीय रचना है। इसमें उन्होंने लेखकीय साहस के साथ स्त्री की सिर्फ बाहरी ही नहीं, उनकी निजी आंतरिक व गोपनीय परतों पर भी खुलकर चर्चा की है, जबकि 'अग्निसंभवा' उपन्यास में एक विदेशी परिवेश में माँ का क्रूरतम रूप दिखाया है जिसमें स्त्री का कोई जज्बात नहीं होता। इसमें आधुनिक जीवन की विड़म्बना से उत्पन्न उदासीनता का गहराई से एहसास मिलता है।

प्रभा खेतान ने यह बताने की चेष्टा की है कि आज रिश्ते अर्थ की धुरी पर घूम रहे हैं। संक्षेप में कह

(शेष पृ.सं. 42)

ग्रेस कुज़ूर की कविताओं में नारी स्वरूप

♦ डॉ. मंजु रामचंद्रन

वर्तमान भूमंडलीकरण की स्थिति में भारतीय नारी ने अपनी स्वतंत्रता को शत प्रतिशत न केवल प्राप्त कर लिया वरन् वह उसे अच्छी तरह भोगती भी आ रही है। आज नारी पुरुष का समकक्ष स्थान प्राप्त कर चुकी है। वह पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ती जा रही है। जीवन के कई क्षेत्रों में भारतीय नारी पुरुष से ज़्यादा आगे बढ़ चुकी भी है। राजनीति, शासन-व्यवस्था, व्यापार- विपणन, शिक्षा-विज्ञान, खेलकूद आदि सभी क्षेत्रों में वह आज पुरुष से मिलजुलकर काम कर रही है। महिला आरक्षण के तहत नारी को ऊँचे पदों पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराने का मौका भी मिल रहा है। पढ़ाई-लिखाई, साहित्य-सृजन, सरकारी तथा गैर-सरकारी नौकरियाँ, विज्ञान-तकनीक, मीडिया, खेलकूद सभी क्षेत्रों में आज महिलाओं ने ऊँची छलांग लगाई है। "जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी ने अपना झंड़ा बुलंद कर दिया है। कामकाजी नारी के रूप में वह अपने को स्थापित कर चुकी है। वह आज प्रगति पथ पर है।"[1] इतना होते हुए भी हमारे भारतवर्ष में ऐसे भी कई इलाके हैं, जहाँ आज भी नारी की स्थिति अंधकारमय है। हमारे देश के पहाड़ों तथा जंगलों में आदिम काल से लेकर रहती आदिवासी महिलाओं का जीवन आज भी संघर्षपूर्ण है।

साहित्यकार का ध्यान हमेशा समाज के शोषितों तथा दीन-दुखियों पर ज़्यादा पड़ता है। वैसे ही आदिवासी जो आदिम काल से यहाँ के मूल निवासी हैं, जिनकी संस्कृति प्रकृति की गोद में विकसित हुई है, और प्रकृति की मर्यादा में रहकर ही उनकी परंपरायें विकसित हुई हैं, उनके संघर्षों पर समाज-व्यवस्था का कभी ध्यान ही नहीं गया। हमारी न्याय व्यवस्था ने जिनकी सौकड़ों पीढ़ियों को आजीवन वनवास दिया, उस आदिम समूह की मुक्ति का साहित्य ही 'आदिवासी साहित्य' है। वर्तमान समय में जिन विमर्शों की चर्चा बड़े ज़ोर-शोर से की जा रही है, उनमें एक आदिवासी विमर्श भी है।

आये दिन लेखन-कार्य से जुड़ी हुई नारियाँ अपनी अस्मिता और अस्तित्व के प्रति सचेत होती हुई नज़र आती हैं। आज नारी मुक्ति, नारी अस्मिता, नारी समानता की खोज आदि विषयों का खूब महत्व है। नारी जीवन की त्रासदी, विसंगति तथा आधुनिक परिवेश में नारी के बदलते आयामों को आज सजीव रूप से अभिव्यक्ति मिल रही है। साथ ही समाज में नारी के अधिकारों के प्रति काफ़ी जागरूकता फैल रही है। "भूमंडलीकरण, बाज़ारीकरण, निजीकरण, साम्राज्यवाद एवं नवउपनिवेशवाद आदि ने दुनिया में एक नया बदलाव लाया। नारी जीवन पर पड़े विभिन्न प्रभावों को समकालीन काव्य में यथार्थ रूप में देखा जा सकता है।"[2] नारी जीवन के इसी यथार्थ का एहसास समकालीन हिन्दी साहित्य की वरिष्ठ कवयित्री ग्रोस कुज़ूर की कविताओं में व्यक्त है।

ग्रोस कुज़ूर की कविताओं का अपना विषय है जिसे उन्होंने परिवेश, संस्कृति और इतिहास से प्राप्त किया है। ग्रोस कुज़ूर ने पूरे मध्य भारत के आदिवासियों के जीवन-संघर्ष को ध्यान में रखकर ही अपनी तूलिका चलाई है। ग्रोस कुज़ूर का सन् 2020 में प्रकाशित

काव्य संग्रह है 'एक और जनी शिकार'। इस संग्रह की कवितायें आदिवासी विश्व दृष्टिकोण को सामने लाती हैं। आदिवासी समुदायों के संघर्ष और आन्दोलन की लंबी परंपरा है। कवयित्री ने 'एक और जनी शिकार' नामक कविता में प्रसिद्ध आदिवासी नेत्री एवं मार्गदर्शिका सिनगी दई को याद करती है, जिन्होंने आदिवासियों की प्रगति केलिए जीवन भर संघर्ष किया था। सिनगी दई को याद करने के पीछे स्त्री नेतृत्व की आवश्यकता और महत्ता पर गंभीरतापूर्वक विचार है। बहुत सारे आदिवासी आन्दोलन को लंबे समय तक चलाने में आदिवासी स्त्रियों की सहभागिता एक महत्वपूर्ण कारण था। इन्हीं आन्दोलनों की परंपरा की यादें ग्रोस कुज़ूर की कविताओं में स्वर प्राप्त है। साथ ही ज़िन्दगी की राह में निरंतर संघर्षरत होकर साहस के साथ आगे बढ़नेवाली स्त्रियों को उनकी कविताओं में जगह मिली है।

पितृसत्तात्मक समाज में मौजूद संघर्षों, दोहरे मानदंड़ों तथा इससे उपजे हुए अत्याचारों और अंधविश्वासों को तोड़ डालने की शक्ति ग्रेस कुजूर की 'आग', 'नन्ही हरी दूब', 'स्त्री', 'पानी ढोती औरत', 'गाँव निकाला', 'माँ बहन बेटी ही क्यों हूँ' आदि कविताओं की खूबी है। 'धार के विपरीत' नामक कविता में युगों से प्रचलित विश्वासों को तोड़ने का आह्वान है। 'स्त्री' नामक कविता स्त्री-पुरुष समानता की उद्घोषणा करती है। यह कविता हर तरह की असमानता के खिलाफ़ खड़ी होकर स्त्री-पीड़ा को अभिव्यक्ति देती है।

"समय के कैनवास में उकेरती है स्त्री
उगते सूरज की रोशनी खामोश हवायें
प्यार की कूची से
बनाती है रिश्तों की तस्वीर
समेट लेती है उन पर जमी धूल
आँचल में अपने
जब दिखती है तस्वीर घूंघली
पोंछ लेती है चुपके से
आँखों के कोर।"[3]

कवयित्री कहती हैं कि स्त्री यदि थके-हारे आदमी की थकावट दूर करना चाहती तो भी पुरुष उसे दबाना ही चाहता है। 'बौना संसार' नामक कविता की पंक्तियाँ देखिए :-

"जब कभी तुम हारे-थके
पथिक की तरह
आगोश में आये हो उसके
तब-तब बरगद -सी हुई है वह
लेकिन तुम्हें उसका बरगद होना
अच्छा नहीं लगता
तुम
कैदकर देते हो उसे
गमले में किसी बोनसाई की मानिंद।"[4]

ग्रेस कुज़ूर की स्त्री पात्र संघर्ष, श्रम,सृजन और प्रतिकार करती हुई आन्दोलनकारी हैं। परंतु कवयित्री का स्वर आधुनिक समय की स्त्रीवादी लेखिकाओं के स्वर से नितांत भिन्न है।

आदिवासी समुदाय में विवाह के सिलसिले में लड़की को अपने मत व्यक्त करने का मौका मिलता है। इसका सबूत 'स्वाद' नामक कविता में मिलता है। चरिये नामक लड़की की राय में धन-दौलत से ज़्यादा कीमत मानवता की है।

"नहीं आबा-
मेरी शादी वहाँ नहीं करना
जहाँ के धान खेत में

चलानी खाद लगी हो।
मेरी शादी वहीं करना
जहाँ के भात का
माँड-झोर स्वाद लगता है।"[5]

आदिवासी लड़की अपने अधिकारों के प्रति सचेत है इसका प्रमाण यहाँ व्यक्त है।

जीवन में अनवरत संघर्ष करने की आवश्यकता के बारे में बेटियों को अवगत कराना 'बिटिया के नाम' कविता की अन्तर्वस्तु है। मंजिल तक पहुँचने में निरंतर प्रयास करते रहना ही चाहिए।

"जीवन में
शिखर तक है पहूँचना
करना है प्रयास अनवरत
x x x x x
परीक्षा का वक्त आता नहीं
अपनी जगह होता है वह स्थिर
चलकर खुद वहाँ तक जाना
निश्चित है फिर मंजिल का पाना।"[6]

ग्रेस कुज़ूर की कविताओं में स्त्री के सभी रूप- बालिका, प्रेयसी, पत्नी, माँ, बहन, बेटी, दादी, नानी आदि- पूरी संवेदना के साथ नज़र आती है। 'पुरखौती ज्ञान' नामक कविता में वे अपने पुरखों को याद करती हैं। अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाये रखने केलिए वे अपने पूर्वजों की यादों को ताज़ा रखना चाहती हैं। वे कहती है,

"जाड़े के दिनों में
नाती-पोते लकड़ी-चूल्हे के पास
आजी को घेरे रहते, आग तापते
और आजी।
यादों को बटलोही से
पुरखों के किस्से निकालती।"[7]

आज के एकल परिवारों के माहौल में इस प्रकार का वातावरण सपना मात्र है।

ग्रेस कुज़ूर की कविताओं में समाज में स्त्री के स्थान बदलने की धुन ज़्यादा सुनाई पड़ती है। आदिवासी समुदाय के भी नहीं दूसरे समाज के भी स्त्री-जीवन के विभिन्न पक्षों ने उनकी कविताओं में अभिव्यक्ति पायी है। हर स्त्री की इनसान होने की गरिमा की रक्षा होनी चाहिए। यही उनका मानना था।

' 'समकालीन कविता मनुष्य को उसकी समस्त विद्रूपताओं के साथ स्वीकार करते हुए भी उसके प्रति आस्थावान है। कवि अपनी अपार सहानुभूति से पददालित मानव में निहित शक्तियों और संभावनाओं का उल्लेख करता है।"[8] ग्रेस कुज़ूर की कविताओं में भी एक प्रकार की आशावादिता का स्वर मुखरित है। उनके अन्दर बेचैनी है, पर वह कभी निराश नहीं होती। 'नन्हीं हरी दूब' में एक तरह की जिजीविषा एवं प्रेरणा का दर्शन होता है।

"लड़की! उठो
उठो, जागो
बता दो कि तुम
अन्तहीन क्षितिज-सी पड़ी
नहीं रह सकती
मिट्टी और धूल के
समन्दर में
स्वतः किनारे नहीं लग सकती।"[9]

स्त्री की पीड़ा कवयित्री को हमेशा आन्दोलित करती रहती है। उनके मन की आकाँक्षा यह भी है कि समाज स्त्री पर भरोसा रखना कब सीखेगा? सिर्फ

(शेष पृ.सं. 31)

सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानियों में नारी

♦ डॉ.लक्ष्मी.एस.एस

ईश्वर की श्रेष्ठ रचना नारी ही है। नारी के बिना समाज भी अधूरा ही है। इसलिए भारतीय समाज में नारी को देवी स्वरूपा माना गया है। प्रारम्भ से ही गार्गी, मैत्रेयी, सावित्री जैसी महान विदुषियों ने समाज एवं संस्कृति को सुरक्षित रखने में अपनी अहम भूमिका निभाई है।

'मार्कण्डेय पुराण' में सभी स्त्रियों को आदि शक्ति का ही स्वरूप माना गया है -"विद्या समस्तास्तव देवी भेदाः। स्त्रियः समस्ता सकला जगत्सु।।"[1] मतलब है- समस्त स्त्रियाँ और समस्त विद्याएँ देवी रूप ही हैं।

भारतीय समाज में नारी की स्थिति अनेक प्रकार के विरोधों से ग्रस्त रही है। समाज के विकास में नारी का स्थान सिद्ध करने में नारी मुक्ति आन्दोलनों का योगदान सदा स्मरणीय है। नारी के विकास के लिए पुरुष का सहयोग मात्र नहीं, नारी को भी नारी का साथ देना है।

भारतीय फिल्मों, समाचार पत्रों तथा साहित्य ने स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को ध्यान में रखकर आभिव्यक्तियाँ दी हैं। संचार माध्यमों के विकास से भी भारतीय नारी का संपर्क अपने देश में और बाहर भी, तेज़ी से बढ़ा। जब साहित्य के क्षेत्र में महिलाओं का आगमन हुआ तब बहुत अधिक आलोचनायें भी हुईं।

हिंदी साहित्य में महादेवी वर्मा की 'श्रृंखला की कड़ियाँ' नारी-सशक्तिकरण का सुन्दर उदाहरण है। उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी आदि लेखिकाओं ने नारी मन के अन्तर्द्वन्दों एवं समस्याओं को अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज के सामने रखा है।

डॉ.ज्योति किरण के शब्दों में "इस समाज में जब स्त्रियाँ अपनी समझ और काबलियत जाहिर करती हैं तब वह कुलच्छनी मानी जाती है, जब वह खुद विवेक से काम करती है तब मर्यादाहीन समझी जाती है,अपनी इच्छाओं, अरमानों के लिए जब वह आत्मविश्वास के साथ लड़ती हैं और गैर समझौतावादी बन जाती है, तब परिवार और समाज के लिए वह चुनौती बन जाती है।"[2] (लेख- हिंदी साहित्य में नारी विमर्श तथा इसकी महता)

हिंदी कथा लेखिकाओं ने अपने लेखन में नारी मन की विवशताओं को विषय बनाया है। अमृता प्रीतम- रसीदी टिकट, कृष्णा सोबती- मित्रो मरजानी, मन्नू भंडारी-आपका बंटी, चित्रा मुदगल- एक जमीन अपनी, ममता कालिया- बेघर, मृदुला गर्ग- कठगुलाब, मैत्रेयी पुष्पा- चाक, प्रभा खेतान- छिन्नमस्ता, राजी सेठ- तत्सम, मेहरुन्निसा परवेज़-अकेला पलाश, कुसुम अंचल- अपनी-अपनी यात्रा, उषा प्रियंवदा-भया कबर उदास, सुदर्शन प्रियदर्शिनी-उत्तरायण आदि कई उपन्यासों में नारी संघर्ष को देखा जा सकता है।

अमेरिका की सुप्रसिद्ध हिंदी रचनाकार सुदर्शन प्रियदर्शिनी का जन्म 27 अगस्त 1942 में लाहौर में हुआ था। अमेरिका में रहकर रेडियो एवं टेलीविज़न कार्यक्रमों का निर्माण किया। उन्होंने अमेरिका में हिंदी के प्रचार- प्रसार हेतु श्रेष्ठ नाटकों तथा हिंदी फिल्मों के

अनेकानेक प्रदर्शन करवाये। वे स्वयं अपना परिचय दे रही हैं -"एक अनाम हस्ताक्षर हूँ। पिछले अनगनित सालों से अपने आपको ढूँढने की तलाश ज़ारी है। अभी अपनी कोई पहचान नहीं बन पायी। परिचय के योग्य कुछ विशेष नहीं है। छिटपुट छपने से जो पहचान बन सकती है, वही बन सकी है।"[3]

सुदर्शन प्रियदर्शिनी जी प्रख्यात लेखिका तो हैं ही बेहद संवेदनशील, भावुक महिला भी हैं। जीवन के उतार-चढ़ाव, आशा-निराशा, प्रौढ़ता-भावनात्मकता के होते हुए जो लिखा वह है अप्रतिम। वे स्वयं कहती हैं मेरा लिखना चाहे वह कहानी हो या उपन्यास कभी भी सायास नहीं रहा सदैव अनायास ही होता है, एक तीव्र भावावेग की तरह। इसलिए शायद मेरी रचनाओं में वह हराव, मनोशीलता या विचारशीलता नहीं आ पायी वे केवल एक ताज़ी संवेदना या तड़प ही बनकर रह जाती है ।"[4]

उनकी रचनाएँ हैं -

1. उपन्यास - रेत का घर (2009), सूरज नहीं उगेगा (1984), जालक (2009), तुम सुखी हो न (2010), न भेज्यो बिदेस आदि।
2. कहानी संग्रह-काँच के टुकड़े, उत्तरायण।
3. कविता संग्रह- शिखंडी युग, बारह, यह युग रावण है, मुझे बुद्ध नहीं बनाना।
4. पंजाबी कविता संग्रह- मैं कोण हाँ।
5. हाइकू -आठ हाइकू।

पुरस्कार एवं सम्मान -

सुदर्शन प्रियदर्शिनी जी को कई पुरस्कार एवं सम्मान भी प्राप्त हुए हैं। उनमें से कुछ हैं-

1. महादेवी पुरस्कार (हिंदी परिषद् ,टोरंटो, कनाडा)
2. महानता पुरस्कार (फेडरेशन ऑफ़ इंडिया , ओहायो)
3. गवर्नेस मीडिया पुरस्कार (संयुक्त राज्य अमेरिका,ओहायो)

सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानियों में भी अतीत के मोह से उत्पन्न द्वन्द्व दृष्टिगत होता है । उनकी कहानियों में मानवीय संवेदना के विविध पक्षों को देखा जा सकता है जिनमें करुणा है, अतृप्ति है, संवेदना है मन को झकझोर देने की सामर्थ्य विद्यमान है। उनकी कहानियों को तीन प्रवृत्तियों में बाँटा जा सकता है ।

1. संवेदना का परिचय

आजकल मनुष्य संवेदनहीन बनते जा रहे हैं। वे किसी को अपनी स्वार्थता-पूर्ति हेतु वश में बनाते हैं, और बिगाड़ते भी हैं। ऐसे लोग पहले अहं की तृप्ति ही चाहते हैं। प्रियदर्शिनी जी की कहानियों में ऐसे अनेक सन्दर्भों का परिचय प्राप्त हाता है।

कहानी 'धूप' की नायिका रेखा अपने बच्चों व पति के साथ रहते हुए भी कहीं सम्बन्धों में समायोजन नहीं कर पाती और पति से अलग रहने का निर्णय ले लेती है। यह सब एक दिन में या अचानक नहीं होता, बल्कि विशाल द्वारा हर जगह उसे नीचा दिखाया जाना, शोषण करना और स्वार्थी होना ही इन सबके कारण हैं।

"पर उसे लगता है कि धीरे-धीरे टूटते हैं तार। धीरे-धीरे ही टूटते हैं सम्बन्ध यह लुहार की ठोक से नहीं सुनार की ठक-ठुक से ही बनते और बिगडते हैं।"[5]

'नि:शक' कहानी में प्रियदर्शिनी जी ने अमेरिकी समाज में पति-पत्नी के संबंधों में विश्वास एवं संबंधों के मूल्यों को बताने का प्रयास किया है। राजीव एक तरह से मुखौटा पहनकर जीवन बिताता है। उसको

अपनी पत्नी का परिचय किसी दोस्त से कराने में शर्म आती है , लेकिन वह अपने मित्रों के साथ भ्रमण पर जाते समय परायी महिलाओं से खूब बातें करता है और उनसे संबंध स्थापित भी करता है। उसकी इस हरकत सुनंदा को संपूर्ण पुरुष वर्ग की पहचान को सुनिश्चित करने का अवसर देती है। "कोई भी आदमी पत्नी से शायद संतुष्ट नहीं होता। राजीव ने कहा- तुम संतुष्ट नहीं हो।....."[6]

'सेंध' कहानी में प्रियदर्शिनी जी ने भारतीय संस्कार एवं विदेशी संस्कार की टकराहट दिखाई है। नायक ऋषभ हिन्दू रीति रिवाज़ों और संस्कारों को माननेवाला है, जबकि नायिका टीना क्रिस्तियन। टीना ऋषभ से शादी इस शर्त पर करती है कि बच्चे क्रिस्तियन बनकर बड़े होंगे। ऋषभ अपने पुत्र का नामकरण और मुंडन संस्कार करना चाहता है जिसकेलिए माँ से सलाह लेता है और तैयारी भी करता है। लेकिन टीना के आगे सारे विचार छोड़ने पड़ते हैं। यह सूचना जब ऋषभ की माँ को मिलती है तो उसे आभास हो जाता है कि उसकी क्रिस्तियन बहू ने हिन्दू रीति-रिवाज़ों एवं संस्कारों में गहरी सेंध लगायी है।

'संदर्भहीन' कहानी में प्रियदर्शिनी जी ने भौतिकवादी जीवन जीनेवाले व्यक्ति की दृष्टि का अवलोकन किया है। उसको प्रत्येक रिश्ता भावनाओं से नहीं बल्कि बौद्धिकता से जीना आता है। उसकी दृष्टि में माता- पिता और किसी अपरिचित व्यक्ति में कोई भेद नहीं है ।

"तुम जानते हो मैं बड़ा भौतिकवादी हूँ। मैं महज किसी रिश्ते को इसलिए स्वीकार नहीं करता कि वह अलां फलां रिश्ते से तुम्हारा कुछ लगता है।"[7]

2. मानवीय संबंधों का परिचय

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इसलिए उन्हें सदा दूसरों से जुड़कर जीना है।आधुनिक युग में व्यक्ति अपने में अधिक व्यस्त हैं, दूसरों के कार्यों में जुड़ने केलिए तत्परता भी नहीं दिखाते हैं । सुदर्शन जी ने मानवीय संबंधों का परिचय अपनी कहानियों के माध्यम से स्पष्ट किया है ।

प्रियदर्शिनी जी की कहानी 'उत्तरायण' की नायिका नीमा भी अपने पति व बच्चों की सारी सुविधाओं को पूरा करती हुई खुद बीमारी से लड़ती रहती है और पराये देश में पराये होने की अनुभूति और उस अपरिचित देश में समायोजित होने के प्रयास में बेगानेपन की शिकार हो जाती है । "वह कुर्सी पर बैठे-बैठे दीवार पर लगे कलेण्डर को देख रही है। इस कलेण्डर का एक-एक पन्ना एक-एक महीने को ही ढो पाता है और हर महीने के बाद वह पन्ना निकाल दिया जाता है ।"[8] दो संस्कृतियों के आपस में मिलने और उनके बीच आपसी टकराहट तनाव की स्थिति पैदा करती है। प्रवासी भारतीय भावनात्मक रूप से भारत से जुड़े हुए हैं और आर्थिक रूप से वे पश्चिमी देशों पर निर्भर हैं। यह उनके लिए दुःख, संताप का कारण बनता है। नीमा इसके बारे में कहती है "यहाँ ऊँची दूकान फीका पकवान। यहाँ विदेश में लोग सम्पन्नता और वैभव बटोरने आते हैं, लेकिन हिस्से आती रिक्तता, अकेलापन और एक रिक्तता जो धीरे-धीरे दीमक की तरह सब कुछ चाट जाती है।"[9]

'अखबारवाला' कहानी मर्मस्पर्शी कहानी है, जिसमें भारतीय परिवेश के भयावह सच को उजागर किया गया है। कहानी की नायिका जया भारतीय संस्कृति के

संस्कार, शिष्टाचार, भावुकता और संवेदनशीलता को हृदय में समेटे हुए विदेश में जा बसती है। जया भारतीय संस्कारों को अपने हृदय में संजोये रहती है, उससे मुक्त होने का प्रयास नहीं करती है। इसलिए वहाँ के यांत्रिक जीवन के कारण उसे एक अधूरेपन का एहसास होता है।

सुदर्शन जी की कहानी संवेदना के धरातल पर उत्कृष्टतम रचना है। इसमें वृद्ध जीवन, अतीत और भविष्य को लेकर अन्तद्वन्द्व, जीवन की जिजीविषा और विवशता को व्यक्त किया गया है।

वृद्ध की यथार्थ स्थिति का चित्रण यों है -'कोई लौटकर जवाब नहीं देता। अपनी ही आवाज़ बार-बार लौटकर आ जाती है। उम्र के साथ आवाज़ की लम्बाई भी अपने से शुरू होकर अपने तक ही रह जाती है।'[10] मालती का जीवन वृद्धावस्था के कारण कठिन हो गया है, जिसमें वर्तमान समय की सच्चाई को भावपूर्ण ढंग से व्यक्त किया गया है ।

'देशान्तर' में नायिका सरिता का मानसिक अन्तद्वन्द्व चित्रित है। उसका बेटा विदेशी लड़की से शादी करता है। वह अपनी माँ के पास जो शादी का कार्ड भेजता है, उसमें अपना एवं पति का नाम लिखा न होने से दुखी हो जाती है। इसमें नायिका पाश्चात्य एवं भारतीय संस्कृति के बीच झूलती रहती है।

3. नारी विमर्श का परिचय

नारी के जीवन से जुड़ी समस्याएँ ही नारी विमर्श के आधार हैं। सुदर्शन जी की कहानियों में नारी की विवशताओं का चित्रण भी है ।

उनकी 'मृगतृष्णा' एक ऐसे युवक की कहानी है जो देखने में एक सामान्य और सज्जन पुरुष लगता है। लेकिन उसके अन्दर बचपन की दोस्त आभा के प्रति मन में कहीं न कहीं प्यार की चिंगारी दबी हुई है। आभा जैसी लड़की दिखाई देती है, लेकिन जब वह उसके पास पहुँचता है तो वह नहीं होती।

कहानी 'मरीचिका' में सुदर्शन जी ने शादी से पहले का आकर्षण और प्रेम तथा शादी के बाद किस तरह से स्त्री का शोषण होता है, पुरुष की वर्चस्ववादी सोच के आगे स्त्री का अपना अस्तित्व नहीं के बराबर बना दिया जाता है, यह अच्छी तरह उद्घाटित किया है।

नायिका एक दफ़्तर में स्टेनो की नौकरी करती है, दफ़्तर का बॉस उसके गुणों से प्रभावित होकर उससे शादी करता है। शादी के बाद तो नायिका को घर में कैद करके रखता है, मरता-पीटता है व उसका शोषण करता है। वह पहले से ही शादीशुदा है, यह प्रेम और आकर्षण सब मायावी होता है जो वह नायिका के दबंग स्वभाव को कुचलने के लिए विवाह रूपी मायावी मुखौटे का सहारा लेता है। "एक दिन माँ ने गुस्से में पुछा मुझसे शादी ही क्यों की आपने, आपके पास सब कुछ तो था पहले से। ..... तुम्हारी बुलन्द हेकडी को ही मैं मसलना चाहता था, वही मैं ने किया।" [11]

कहानी 'अब के बिछुड़े' में रजत ने अपने परिवार और मिनी से अपने प्रेम के विषय में कभी कह नहीं पाया। उसकी माँ ने यह अनुमान अवश्य लगा लिया कि वह किसी से प्रेम करता है और इसका पता लगाने केलिए उसने मिनी को चुना। तब बचपन से उसका अपने प्रति आकर्षण तथा प्रेम मिनी समझ सकी। किन्तु वह इस सत्य को रजत से न सुन सकी, क्योंकि रजत फिर कभी उससे मिल ही नहीं था। उसकी माँ को बाद में पता चला कि रजत मिनी से प्रेम करता

है और उन्होंने मिनी की माँ को यह बात बताई, पर तब तक बहुत देर हो चुकी थी। मिनी उसकी प्रतीक्षा में मन ही मन दुखी तथा पीड़ित होती रही और अन्त में अंतस की पीर जब बाँध तोड़कर बाहर निकली तो उसका स्त्री मन उसमें डूब गया- "फिर एक दिन पता चला, रजत अपनी सुधबुध खो बैठा है। वह पागलखाने में है। उस दिन पहली बार लगा,कहीं अंदर एक हरसिंगार का पौधा था, जो आज मुरझा गया है। उस दिन सचमुच कुछ अनहुआ हुआ था।"[12]

कहानी 'सावित्री नं 3' की नायिका इतनी गऊ है कि प्रभुदयाल जैसे मायावी इंसान को वह पहचान नहीं पाती, जो दूसरी स्त्री के पास जाता है उसे अपनी सारी कमाई देता है। अन्त में वह स्त्री ही उनकी मृत्यु का कारण बनती है। प्रियदर्शिनी जी ने यहाँ सावित्री के माध्यम से एक ऐसी नारी पात्र को जीवन्त किया है, जो हर तरह से अपना उत्पीड़न, शोषण होने के बाद भी अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती दिखाई देती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारतीय मूल की सुदर्शन जी ऐसी लेखिका हैं, जिन्होंने अपने अनुभवों को सृजनात्मक लेख से खींचा है। उनकी कहानियाँ एक ओर प्रवासी भारतीयों की पीड़ा को व्यक्त करती हैं तो दूसरी ओर उन्हें भारतीय धर्म व दर्शन से भी जोड़ती हैं। उनका योगदान हिंदी साहित्य के लिए स्तुत्य ही है।

सन्दर्भ

1.वेबदुनिया हिंदी

2. इग्नाइटेड.इन, बालदेवी, हिंदी साहित्य में नारी और उसकी महता

3. प्रवासी हिंदी साहित्य और सुदर्शन प्रियदर्शिनी, पृ 95

4. वही, पृ.15

5. उत्तरायण, पृ. 31

6. वही, पृ. 41

7. प्रवासी हिंदी साहित्य और सुदर्शन प्रियदर्शिनी, पृ. 219

8. उत्तरायण, पृ. 21

9. वही, पृ. 22

10. वही, पृ. 31

11. वही, पृ. 50

12. वही, पृ. 19

सहायक ग्रन्थ

1. प्रवासी महिला कथाकार, सं.डॉ.एम.फ़िरोज़ खान, सारंग प्रकाशन, वाराणसी।

2. प्रवासी हिन्दी साहित्य और सुदर्शन प्रियदर्शिनी, प्रो. प्रदीप श्रीधर, डॉ, शिखा श्रीधर, शुभं पुब्लिकेशन्स, कानपुर।

3. उत्तरायण (कहानी संग्रह) सुदर्शन प्रियदर्शिनी, अमन प्रकाशन नई दिल्ली।

4. वाङ्मय, त्रैमासिक, अलीगढ़, जुलाई-दिसंबर 2018।

♦असिस्टन्ट प्रोफसर

हिन्दी विभाग,

एन.एस.एस कॉलेज, पंतलम्।

सूचना

NET (हिन्दी) तथा Spoken Hindi की कक्षाओं में प्रवेश पाने को इच्छुक व्यक्ति संपर्क करें -

फोन : 9946253648, 0471 - 2332468

भारतीय समाज और स्त्री मानवाधिकार

♦ डॉ.प्रिया.ए

मानवाधिकार वे अधिकार होते हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव मात्र होने के नाते ही प्राप्त होते हैं। मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 में मानवाधिकारों को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि "व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता और गरिमा से संबन्धित वे अधिकार मानवाधिकार कहलाते हैं जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत हैं, अंतर्राष्ट्रीय संधियों में उल्लिखित हैं अथवा भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं।"[1] भारत में विधि का शासन है और भारतीय विधि में मानवाधिकारों के संरक्षण से संबन्धित कई प्रावधान किए गए हैं। हमारे संविधान और कानून में विधानसभा द्वारा मानवाधिकार से संबन्धित कई व्यवस्थाएँ की गयी हैं। मानवाधिकार किसी भी सभ्य समाज की आधारशिला है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में इसकी अनिवार्यता बढ़ जाती है। आम व्यक्ति को पर्याप्त मानवाधिकार उपलब्ध हैं तो उस समाज विशेष को सभ्य, सुसंस्कृत और विकसित कहा जा सकता है।

हमारे देश में मानवाधिकार सार्वभौमिक रूप से लागू हैं। मानवाधिकार एक गतिशील अवधारणा है, जो समय के अनुरूप बदलती रहती है। आजकल प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त करने के अवसर भी उपलब्ध है। वर्तमान समय दुनियाभर में मानवाधिकारों की रक्षा के लिए आँदोलन चल रहे हैं। यह एक प्रामाणित तथ्य है कि दुनिया में सब से अधिक अपराध और अत्याचार महिलाओं के खिलाफ होते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में महिलाओं के मानवाधिकार काफी महत्वपूर्ण हो जाते हैं। विश्व के लगभग सभी देशों में महिलाओं को विशेष अधिकार दिए गए हैं ताकि वे सम्मानपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकें।

महिला आँदोलन के इस दौर में एक ओर जहाँ महिलाओं को अधिकाधिक अधिकार दिए जाने की कवायद चल रही है, वहीं दूसरी ओर महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने का प्रयास भी ज़ारी है। शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ने के कारण महिलाओं को अपने घर के बाहर जाना पड़ता है। अपने स्कूल, कार्य स्थल जहाँ भी हो उसे कई प्रकार के अपराधों का, हमलों को सामना करना पड़ता है। महिलाओं को संरक्षण प्रदान करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने समय-समय पर काफी मार्ग खोल दिए हैं।

"महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के विभेदों की समाप्ति संबन्धी अभिसमय की घोषणा सन् 1979 में की गयी थी और 3 सितंबर, 1981 से यह अभिसमय दुनियाभर में लागू हो गया। इस अधिकार पत्र में पुरुषों और, महिलाओं के समान अधिकारों में आस्था को गंभीरतापूर्वक कहा गया था।"[2] इसमें आगे भी कहा गया था कि सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र और समान अधिकारों के हकदार हैं और लिंग-संबन्धी विभेद सहित हर प्रकार के विभेद के बिना वे संयुक्त राष्ट्र की घोषणा में उल्लिखित अधिकारों के हकदार हैं। इस अभि- समय में कहा गया है कि किसी भी देश के संपूर्ण विकास, विश्व के कल्याण और शांति के हित

का तकाज़ा है कि महिलाएँ पुरुषों से पूर्ण सभागत के स्तर पर सभी क्षेत्रों में अधिक से अधिक शिरकत करें।

भारतीय संविधान स्त्री-पुरुषों में किसी प्रकार का कोई भेद नहीं करता है। जिस प्रकार संविधान के सम्मुख स्त्री-पुरुष समान हैं, उसी प्रकार महिलाओं के पक्ष में बने कानूनों में भी उन्हें पुरुषों के समान दर्जा देकर उनके लिए समुचित न्याय का प्रबंध किया है। महिलाओं के हक में दहेज प्रतिषेध अधिनियम, भरण-पोषण संबंधी कानून, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, मातृत्व लाभ अधिनियम, हिन्दू अवयस्कता एवं संरक्षता अधिनियम, विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, सती निरोधक कानून, समान पारिश्रमिक अधिनियम, परिवार न्यायालय अधिनियम, मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम, बाल-विवाह अवरोध अधिनियम और अनैतिक व्यापार दमन अधिनियम जैसे अनेक कानून बने हैं, जिनके कारण महिलाओं की स्थिति में उत्तरोत्तर सुधार हुआ है। भारतीय संविधान तथा विभिन्न दंड़ संहिताओं में भी कई ऐसे नियम, विनियम, अधिनियम आदि बनाए गए हैं; जिनकी सहायता से महिलाओं के हितों की रक्षा की जा सकती है। इसके अलावा अंग्रेज़ों के शासनकाल में भी महिला सबन्धी कुछ अधिनियम बनाए गए थे, जिनके कारण महिलाओं की स्थिति में काफ़ी सुधार आ गया है।

भारतीय संविधान तथा विभिन्न दंड़ संहिताओं में भी कई नियम, विनियम और अधिनियम बनाए गए हैं; जिनकी सहायता से महिलाओं के हितों की रक्षा की जा सकती है। "भारतीय दंड़ संहिता, 1860 में महिलाओं पर होनेवाले अत्याचार एवं निर्दयता के विरुद्ध सजा देने की व्यापक रूप से व्यवस्था की गई है। धारा 312 के तहत किसी गर्भवती स्त्री का गर्भपात बलपूर्वक करानेवाले को तीन साल की सज़ा अथवा जुर्माना अथवा दोनों से दंड़ित किया जा सकेगा।"[3]

सन् 1961 में तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने दहेज को एक सामाजिक समस्या तथा मानव मात्र पर एक कलंक एवं कुप्रथा मानते हुए एक कानून पारित कराया जिसे 'दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961' नाम दिया। "इसके द्वारा दहेज जैसी गंभीर समस्या पर अंकुश लगाने की कोशिश की गई। सन् 1986 में पारित संशोधन अधिनियम द्वारा सज़ा से संबन्धित प्रावधानों को और अधिक कठोर बनाया गया है।"[4] दहेज देने अथवा लेनेवालों को दोषी माना गया है और पाँच साल की सज़ा और अर्थदंड दिया गया है।

हमारे संविधान के अनुच्छेद 23 एवं 24 में स्त्रियों पर होनेवाले शोषण के विरुद्ध अधिकार के बारे में बताया गया है। इसमें मानव दुर्व्यापार और बलात्कार के श्रम का विरोध किया गया है। इस नये संशोधन के लागू होने के बाद महिलाओं पर होनेवाले अनैतिक, असामाजिक एवं अश्लील किस्म के कार्यों पर कमी आ गयी है। स्त्री का सम्मान समाज में बढ़ाने एवं देह व्यापार जैसे कुकर्मों से स्त्रियों को सुरक्षित करने का प्रयास भी इसके द्वारा लागू किया गया है।

इक्कीसवीं सदी के इस समय में भी गाँवों एवं शहरों में भी छोटे-छोटे बच्चों को मंड़प में बिठाकर उनकी शादियाँ रची जाती हैं। "1929 में पहली बार बाल विवाह पर टोक लगाते हुए एक अधिनियम पारित किया गया था। इसे पूर्ण रूप से प्रयोगात्मक रूप देने के लिए सन् 1978 में व्यापक संशोधन किये गये और इस संशोधित अधिनियम द्वारा 21 वर्ष से कम उम्र के

लड़के एवं 18 वर्ष से कम उम्र की लड़की के विवाह पर रोक लगाई गई है।"[5]

भारतीय समाज में विवाह ऐसा अटूट बंधन है जो कभी तोड़ा नहीं जा सकता। यह सबन्ध हमेशा-हमेशा के लिए होकर जन्म-जन्मान्तर तक का रिश्ता है। पर जब पति की मृत्यु हो जाती है तो जन्म-जन्मान्तर का रिश्ता अपना वज्र रूप धारण कर लेता और ऐसी हालत में पति की चिता, पर पत्नी को सती होनी पड़ती थी। नहीं तो जीवनपर्यन्त विधवा के रूप में समाज, परिवार और आम जनता से तिरस्कृत एवं यातनामय, दुःखी जीवन व्यतीत करना पड़ता था। उसे किसी भी अच्छे कार्य में, भोज में, खुशी के अवसरों पर अथवा अन्य आयोजनों पर शामिल होने में मनाही थी। विधवा युवती को एक कमरे की चारदीवारी में संपूर्ण सफेद अथवा काले वास्त्र पहनकर एकाकी जीवन व्यतीत करना पड़ता था। इस प्रथा का सर्वप्रथम राजाराम मोहनराय ने जमकर विरोध किया एवं सती प्रथा पर रोक लगाने में काफी हद तक सफलता भी प्राप्त की।

सती प्रथा एक धार्मिक कार्य नहीं है। यह एक बहुत ही घृणित-सांस्कृतिक एवं असामाजिक तथा अंधविश्वासी कार्य है। इसकी भर्त्सना करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। इसी कर्तव्य को निभाने के उद्देश्य से लार्ड विलियम बैन्टिक ने अप्रत्यक्ष रूप से इस प्रथा पर रोक लगाने का प्रयत्न किया और 'हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम' पारित किया।

"हमारे संविधान का अनुच्छेद 23 एवं अनुच्छेद 24 महिलाओं के शोषण के विरुद्ध अधिकार के बारे में हैं। अतः मानव दुर्व्यापार और बलात्कार के श्रम का विरोध करता है। हमारी संसाद ने 1956 में उपरोक्त अधिनियम पारित किया है।"[6] इस नियम के लागू होने पर अनैतिक व्यापार की संख्या में कमी आई है। इस नियम के द्वारा देह-व्यापार एवं स्त्री-शिष्टता पर होनेवाले अपराधों पर अंकुश लगाया जा सकता है। स्त्री का सम्मान भी समाज में बढ़ा है व कानून के डर से महिला पर भी ऐसे घृणित कार्य में संलग्न होने पर पाबन्दी लगी है।

भारतीय समाज ने सदैव शोषण का विरोध किया और इसी के साथ पग-पग पर उसने मानवाधिकारों के पक्ष में भी अपनी आवाज़ बुलंद की। भारतीय विधि में मानवाधिकारों के पर्याप्त महत्व पर बल दिया गया। इसके अलावा सरकार मानवाधिकारों के लिए समयानुसार और उपाय भी करती रही है। भारतीय संस्कृति में नारी को एक महान शक्ति के रूप में सम्मान दिया जाता रहा है। महिलाओं को घरेलू मामलों से संबंधी, जायदाद संबन्धी, कार्यक्षेत्र संबन्धी, व्यक्तिगत सुरक्षा-संरक्षण संबन्धी और भी तमाम हितकारी कानूनों का संरक्षण प्राप्त है। जो आम महिला आज भी अपने अधिकारों से वंचित है; उसे अपने अधिकारों के प्रति सचेत करना ही शिक्षित समाज का दायित्व है। महिलाओं की सुरक्षा के लिए सभी प्रकार के मानवाधिकार पारित किए गए हैं; इसके तहत भारतीय समाज में महिला सुरक्षित हो सकती है।

संदर्भ

1. Human Rights and Police Administration - Kamalaxi G. Tadsad, Harish Ramaswamy - P. 13

2. Human Rights an Introduction - Darren J O'Byrne - P. 369
3. Human Rights - Lakshmi Narain Agarwal, Dr. S.C. Singhal - P. 35
4. Child Rights in India - Asha Bajpai - P. 207
5. महिला और मानवाधिकार - एम.ए.अंसारी
6. भारत में मानवाधिकार - प्रो.मधुसूदन त्रिपाठी

♦ असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, के.जी.कॉलेज
पाम्पाडी, कोट्टयम,
केरल-686502
मो: 9447294227, 9946318613

(पृ.सं.22 के आगे)

आदिवासियों की नहीं, समाज के विभिन्न स्तर की स्त्रियों के जीवन की कठोरता तथा असंगतियों को भी ग्रेस कुज़ूर ने अपनी कविता का विषय बनाया है। 'नियति' नामक कविता में वे ज़िन्दगी रूपी पहाड़ को लांघने में विवश लड़कियों की नियति पर विचार करती हैं।

"सिर पर लकड़ियों का भारी बोझ उठाती
पहाड़ की ढलान उतरती लड़कियाँ
लाँधना चाहती है ज़िन्दगी के पहाड़
x x x x x
नहीं पता
इस रेखा के नीचे चलना
नियति है उनकी।"[10]

आकाशवाणी के उपमहानिदेशक का पद-भार संभालने के दौरान देश के विभिन्न इलाकों में घूमने तथा वहाँ की स्त्रियों की ज़िन्दगी की असलियत से परिचित होने का सुअवसर कवयित्री को पाप्त हुआ। अतः उनकी कविताओं में आदिवासी तथा अन्य नारियों के जीवन के विविध पक्ष स्वर प्राप्त हैं। ग्रेस कुज़ूर की कवितायें एक विशिष्ट प्रकार के सौन्दर्यबोध से युक्त है। इनमें आदिवासी जीवन का भी सौन्दर्य है। उन्होंने अपनी कविताओं के बिम्ब-विधान के द्वारा आदिवासी समाज तथा स्त्रियों के सच्चे और प्रामाणिक चित्र को उकेरा है। उनकी कविताओं में आदिवासी संस्कृति, जीवन मूल्य और आदिवासी दर्शन से जुड़े बिम्ब और प्रतीक हैं। इस प्रकार आदिवासी कविता में सर्वाधिक चिन्तनशील कवयित्री के रूप में ग्रेस कुज़ूर का नाम मान्यता प्राप्त है।

संदर्भ

1. समकालीन हिन्दी उपन्यासः दशा और दिशा, डॉ.पशुपतिनाथ उपाध्याय, पृ. 345
2. समकालीन हिन्दी कविता : विविध संदर्भ, डॉ. नवीन नन्दवाना, पृ. 95
3. एक और जनी शिकार, ग्रेस कुज़ूर, पृ. 34
4. वही, पृ. 52
5. वही, पृ. 38
6. वही, पृ. 39
7. वही, पृ. 129
8. आधुनिक हिन्दी साहित्य : विविध परिदृश्य, डॉ. पंडित बन्ने, पृ. 52
9. एक और जनी शिकार, ग्रेस कुज़ूर, पृ. 32
10. वही, पृ. 118

♦ असोसिएट प्रोफसर
हिन्दी विभाग, यूनिवेर्सिटी कॉलज,
तिरुवनंतपुरम।

स्त्री अस्तित्व की तलाशः सुधा अरोड़ा की कहानियों में

♦ डॉ.रीनाकुमारी.वी.एल

समकालीन कथा साहित्य में लेखिकाओं का विशिष्ट स्थान है। लेखिकाओं ने अपने कथा साहित्य में नारी साहित्य के माध्यम से नारी के अस्तित्व को नव चेतना देने का प्रयास किया है। नारी ने नारी की मनस्थिति को जिस विशिष्टता के साथ पहचाना है और जिस सजगता से उसको अभिव्यक्त किया है, वह बड़े महत्त्व की बात है। इसलिएआज महिला कथा साहित्य अत्यधिक सशक्त और लोकप्रिय हो गया है ।

स्नेह, सहानुभूति, ममता, प्रेम, करुणा, वेदना आदि गुण स्त्री में अधिक होने के कारण उनकी अभिव्यक्ति में भी पुरुष लेखकों से अधिक सफलता दिखाई देती है। "स्त्री आन्दोलन की यह सबसे बड़ी सफलता थी कि स्त्री नेअपने सामाजिक, नैतिक और परंपरा प्रदत्त बंधनों की पहचान की और उन्हें समाप्त करने की दिशा में प्रयास किया और धीरे-धीरे सफलता भी पायी। अपनी हालत की सही पहचान कर पाना भी एक क्रांतिकारी कदम होता है और वही आगे संघर्ष का रास्ता तय करता है और बदलाव केलिए साहस देता है।"[1] स्त्री का विकास क्षेत्र पारिवारिक जीवन है और इन समस्याओं के चित्रण में उन्हें जितनी सफलता प्राप्त होती है, वह पुरुषों द्वारा लिखे कथा साहित्य में दुर्लभ दिखाई देता है। लेखिकाओं ने अपने लेखन में रोमांटिक बोध, प्रेम की अभिव्यक्ति, विवाह के प्रति नया दृष्टिकोण, संबंधों की नवीन व्याख्या, मातृत्व भाव के प्रति नवीन दृष्टिकोण, नारी मनोविज्ञान का चित्रण, स्वतंत्र व्यक्तित्व की खोज, राजनैतिक चेतना आदि विषयों को अत्यंत रोचकता से प्रस्तुत किया है।

सुधा अरोड़ा जी सातवें दशक की प्रखर, सचेत और बहुमुखी प्रतिभा की धनी है। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से समाज की ज्वलंत समस्याओं को बड़ी ही बखूबी के साथ चित्रित किया है। लेखन उनकेलिए जुनून है, तो मिशन भी है। औरत को भारतीय सामाजिक पृष्ठभूमि में रखकर उसकेलिए नैसर्गिक स्पेस की माँग सुधाजी के चिंतन का बीजसूत्र रहा है।

साहित्य की कई विधाओं में सुधाजी ने साहित्य-सृजन किया है। सुधा अरोड़ा की कहानियाँ एक ऐसे आकुल व्यक्तित्व की खोज है, जो अपने ही दायरे में छटपटा रहा है, कमज़ोर है, पर सशक्त बनकर मुक्ति भी पाना चाहता है। उनकी कहानियों में आधुनिक नारी का आतंकित द्वंद्व-चित्रण है। सुधाजी की कहानियों की समीक्षा करते हुए रघुवीरदयाल वार्ष्णेयजी ने लिखा है- "सुधाजी की पीड़ा, नारी जीवन की अस्तित्वगत गहराई, विसंगति और अनुभूति की गहराई इनकी सभी कहानियों में उभरकर आई है। सुधाजी के पास अनुभूति है और अनुभूति को अभिव्यक्त करने की क्षमता है।" [2]

सुधा अरोड़ा जी के प्रकाशित कहानी संग्रह हैं-

1. बगैर तराशे हुए (1967)
2. युद्ध विराम (1977)
3. महानगर की मैथिली (1987)

4. काला शुक्रवार (2003)
5. काँसे का गिलास (2004)
6. मेरी तेरह कहानियाँ (2005)
   और
7. रहोगी तुम वही (2007)

सुधा अरोड़ा कम लिखती हैं, मगर जब लिखती हैं तब ऐसा लिखती हैं कि पाठक के मानस में उसकी छवि देर तक बनी रहती है और दिल की गहराइयों तक पहुँचती है। वे वर्जनाओं से परे सीधा और सच्चा लेखन करती हैं। समाज में नारी के अस्तित्व की खोज को उन्होंने अपने साहित्य में महत्वपूर्ण माना है। सुधा अरोड़ा की रचनाएँ इस बात का प्रमाण है कि उनकी हर कृति समाज के समक्ष किसी न किसी रूप में एक नई सोच, नई दिशा व नई उम्मीद के साथ प्रस्तुत है। रचनात्मक अवदान के तहत उनकी कहानियाँ अमिट छाप छोड़ती हैं। वर्चस्व, आधी आबादी, रहोगी तुम वही आदि 'काला शुक्रवार' कहानी संग्रह की प्रमुख कहानियाँ हैं।

'काला शुक्रवार' कहानी संग्रह में सुधा जी ने औरत का घर, परिवार तथा सामाजिक जीवन में स्थान निर्धारित करने का प्रयास किया है। बदलते जीवन में आधुनिकता के प्रभाव से नारी को उसके अस्तित्व की लालसा उत्पन्न हुई है। आर्थिक स्वावलंबन के साथ आज की नारी स्वाभिमान के साथ अपने जीवन-परिवर्तन की दिशा में अग्रसर हुई है। सुधा जी की ये कहानियाँ नारी को पुरुष सत्तात्मक परिवार में सम्मान-जनक स्थान प्राप्त करने की अभिव्यक्ति की हैं। साथ ही साथ राजनीतिक और सामाजिक-व्यवस्था की विद्रूपताओं और भ्रष्टाचार के घिनौने रूपों का चित्रण भी मिलता है।

'वर्चस्व', घर में स्त्री के होने का अस्तित्व ढूँढती कहानी है। घर में कुतिया और कंप्यूटर दोनों एक साथ आये थे। इसलिए कुतिया नाम फ्लॉपी रख दिया जाता है। अगर उसे कोई बाहर का आदमी उसके नाम से न बुलाकर जाति से संबोधित करता है तो घर के सभी सदस्य फौरन उसका नाम बता देते हैं। शादी के तीस-पैंतीस साल बाद भी घर की तथाकथित मालकिन को घर में उसका सम्मान नहीं मिलता है, पर उसी घर में एक कुतिया को पूरा मान-सम्मान मिलता है।

करवाचौथ के दिन सविता ने रात का खाना दोपहर को तैयार करके रख दिया। फ्लॉपी केलिए चावल में सब्जियाँ उबालकर खाना तैयार कर दिया। लेकिन फ्लॉपी ने तिरछी नज़र से सविता की ओर देखा और कैटरपिलर की तरह हाथ-पैर समेटकर ज़मीन पर मुँह टिकाकर पसर गई। जब दोनों बेटियाँ स्कूल से लौट आईं तो फ्लॉपी का खाना देखकर पापा से शिकायत की "पापा देखो ना, मोम ईस टॉर्चरिंग पुअर लिट्ल सोल।"[3] साहब ने क्रोध से रसोई में जाकर डीप फ्रीज़र से फ्लॉपी का मन पसंद पोर्क मिन्स्ड निकाला, डिफ्रॉस्ट करके खाना दिया। घर के सारे सदस्यों ने मेज़ पर ढ़का हुआ खाना गरम करके स्वाद ले लेकर खाया। चाँद देर से निकलने के कारण सविता बहुत ही थकी हुई थी। आखिर चाँद निकला तो सविता ने जाली की पोट से चाँद देखा और प्रार्थना की- "है गौरजा माता, अगले जनम में अगर मुझे मनुष्य योनी में जन्म न मिले तो पशु योनी में मुझे इसी पालतू घर की कुतिया बना देना ताकि मैं करवाचौथ के दिन अपना झूठा मुँह किसी सुहागन की लाल साड़ी से पोंछ सकूँ।"[4] घर में स्त्री अपने पति की भलाई केलिए कुछ भी करे, पर उसे अपने होने की

स्थिति को नहीं बना पाती। आधुनिक जीवन के बदलते रूप में घर में स्त्री का स्थान नहीं बदला है, पुरुष आज भी घर में स्त्री की सत्ता चाहता है।

'आधी आबादी' कहानी की औरत पूरे एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। भारतीय महिलाओं का एक बड़ा प्रतिशत गृहिणी वर्ग है, जिसका अपना कोई अस्तित्व नहीं। इस कहानी की गृहिणी औरत घर से इतना ज़्यादा चिपकती जाती है कि "हर कोने-कोने की धूल साफ करती हुई, हर चीज़ को करीने से रखती हुई, लजीज़ खाने को तनिए की हरी-हरी कटी हुई पत्तियों से सजाकर तरह-तरह के आकारोंवाले खूबसूरत बर्तनों में परोसती हुई और फिर रात को सबके चेहरे की तृप्त मुस्कान को अपने चेहरे पर लिहाफ की तरह ओढ़ कर सोती हुई।"[5] कभी घर से बाहर निकलते समय वह अपना एक हिस्सा घर में ही छोड़ जाती। "वह हिस्सा घर का सेफ्टी अलार्म जैसा था, जिसका एक तार उस औरत से जुडा था।"[6] शुरुआत में वह अपने एक चौधाई हिस्सा घर पर छोड़ जाती है पर धीरे-धीरे वह तीन चौथाई हिस्से को घर-गृहस्थी में ऐसा बुझा हुआ पाती है कि बड़ी प्रसन्नता से आपका एक तिहाई हिस्सा अपने लिए रखती है। एक पढ़ी-लिखी स्त्री घर गृहस्थी के दलदल में इतने गहरे फँस जाती है कि वह चाहते हुए भी अपने को उस दलदल से निकाल नहीं पाती।

पति बीमार बनता है तो उसका वह तीन चौथाई हिस्सा उनकी सेवा करने में जुड़ा रहता है। उनकी तबियत सुधार होने के साथ-साथ उनका बायाँ हिस्सा इतना कमज़ोर हो चुका था कि उसका वह तीन चौथाई हिस्सा सेहतमंद हो रहा था। विवाह के बाद एक स्त्री अपने जीवन का आरम्भ, मध्य और अन्त चारदीवारी के भीतर अपने पति के आसपास घटते हुए छोड़ती है। घर-परिवार की ज़िम्मेदारियाँ ऐसे कुछ जकड़ जाती हैं,अपने आप को खो बैठती है। एक पढ़ी-लिखी औरत की त्रासदी यह है कि वह अपनी निजी जीवन का महत्वपूर्ण और सुनहरा हिस्सा अपने घर को सुचारु रूप में चलाने में, अपने पति की रुचि और पसन्द के अनुसार अपने आपको ढ़ालने में, अपने बच्चों के भविष्य की चिंता में होम कर देती है।

'रहोगी तुम वही' कहानी में पति के पास पत्नी के शिकायतों का अंतहीन भंड़ार है, जिन्हें वह मुखर होकर पत्नी पर जाहिर कर रहा है। खान-पान से लेकर पढ़ाई-लिखाई तक के हर काम में पत्नी को कोई न कोई आपत्ति उठाकर निरंतर डाँटता रहता है। वह भोजन में कमियाँ ढूँढ़ते हुए कहता है "यह कोई खाना है! रोज़ वही दाल-रोटी-बैंगन-भिंडी और आ....लू। आलू के बिना भी कोई सब्जी होती है इस हिन्दुस्तान में या नहीं? मटर में आलू, गोभी में आलू, मेथी में आलू, हर चीज़ में आ....लू। तुमसे ढंग का खाना भी नहीं बनाया जाता । अब और कुछ नहीं करती हो तो कम से कम खाना तो सलीके से बनााया करो।....जाओ, एक महीना अपनी माँ के पास लगा आओ, उनसे कुछ रेसिपीज़ नोट करके ले आना.....अम्मा तो तुम्हारी इतना बढ़िया खाना बनाती हैं, तुम्हें कुछ नहीं सिखाया? कभी चायनीज़ बनाओ, कॉन्टीनेन्टल बनाओ....खाने में वैरायटी तो हो...." [7] यदि पुरुष के पास अन्य कोई शोषण का तरीका नहीं बचता तो वह हर पकवन में नुक्सान निकालता है । पति को पत्नी के हर रूप से शिकायत है। देर रात तक किताबों में डूबी रहे तो

(शेष पृ.सं.38)

'कठगुलाब' में नारी की जिजीविषा

♦ डॉ.सौम्या.वी.एम

मृदुला गर्गजी लेखिकाओं में एक अलग अस्तित्व रखनेवाली हिन्दी की लोकप्रिय उपन्यासकार मानी जाती हैं। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं- अनित्य (उपन्यास), एक और अजनबी (नाटक), ग्लेशियर से (कथासंग्रह), चित्तकोबरा (उपन्यास), चुकते नहीं सवाल (ललित लेखसंग्रह), वंशज (उपन्यास), कठगुलाब (उपन्यास) आदि। उनका सृजन मुख्यतः भारत के बंद समाज में घिरी स्त्रियों की समस्याओं पर केंद्रित रहा है । सामाजिक एवं आर्थिक भिन्नता के कारण उनका जीवन अनेक संघर्षों एवं पीड़ाओं से जूझ रहा है । इसका समूचा चित्रण मृदुला जी कहानियों में देखने को मिलता है ।

मृदुला जी का बहुचर्चित उपन्यास है 'कठगुलाब'। यह सन् 1996 में प्रकाशित (ज्ञानपीठ प्रकाशन) उपन्यास है। इसका अंग्रेज़ी अनुवाद 'कंट्री ऑफ गुडबाइज़' नाम से सन् 2003 में प्रकशित हुआ। इसका मलयालम अनुवाद 'कठगुलाब' नाम से श्री.डॉ.एस. तंकमणि अम्मा और के.जी.बालकृष्ण पिल्लै ने मिलकर किया। इसका प्रकाशन सन् 2008 में हुआ। 'कठगुलाब' को सन् 2004 में हिंदी में उत्कृष्ट लेखन के लिए व्यास सम्मान मिला।

'कठगुलाब' में सामान्य जीवन पर आधारित कथा है। इसमें केवल भारतीय ही नहीं अपितु यूरोपीय स्त्रियों की पीड़ा की कथा भी है। यह पुरुष प्रधान समाज में जी रही स्त्री के शोषण तथा मुक्ति की व्यथा-कथा है। इसमें यह बात उभरकर सामने आती है कि स्त्री चाहे किसी भी देश की क्यों न हो, वह आज भी प्रताड़ित है। स्मिता, मारियान, नर्मदा, असीमा, नीरजा आदि इस उपन्यास की मुख्य स्त्री-पात्र हैं। ये सभी निर्लज्ज व्यवस्था से मुक्ति की तलाश में हैं।

'कठगुलाब' का प्रतीकात्मक अर्थ है 'नारी की जिजीविषा'। इस कृति में मृदुला गर्ग ने रेखांकित किया है कि स्त्रियाँ गुलाब नहीं हैं, जो उग जाने पर अपने आप खिल भी जाते हैं। वे कगुलाब हैं, जिन्हें थोड़ी सी देखभाल के साथ खिलाना भी पड़ता है। वे काठ सदृश कठोर हैं तथा भीतर स्त्री मन की कोमलता भी है । इस उपन्यास में स्त्री-पुरुष के मनोवैज्ञानिक पहलुओं का चित्रण हुआ है। नर-नारी सबंधों की जटिल बुनावट का प्रत्यक्ष प्रमाण इसमें मिलता है। लेखिका ने विविध स्तरों की नारियों के जीवन का सूक्ष्मतम अध्ययन करने के बाद ही इस उपन्यास का सृजन किया है। इसमें पात्र कथावाचक के रूप में आकर मेरा नाम स्मिता/ मारियान/ असीमा/ नर्मदा/ विपिन कहकर हमें उनकी दुनिया में ले जाते हैं। इसके वातावरण का फैलाव भारत से अमेरिका तक है। हिंदी में नारीवादी कहानियाँ बहुत कम हुई हैं। ऐसी स्थिति में 'कठगुलाब' ने हिंदी कहानी जगत में एक तूफान उड़ा दिया।

इसमें चार मुख्य नारी पात्र और एक पुरुष पात्र भी हैं। स्मिता इसका सबसे मुख्य पात्र है। अन्य जो नारी पात्र हैं वे सभी स्मिता से संबंध रखते हैं। इसमें जितनी स्त्री पात्र हैं उतने ही पुरुष पात्र भी हैं। ये सभी पुरुष से

पीड़ित भी हैं और अपने अस्तित्व तथा अस्मिता के लिए संघर्ष करती हैं। वे सभी अपनी-अपनी कहानी बताती हैं। वे सभी स्वभाव व प्रकृति से एक-दूसरे से अलग हैं। महिलाओं में नर्मदा को छोड़कर शेष सभी पढ़ी-लिखी हैं। ये सभी अपने-अपने अनुभव के आधार पर स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं को हमारे समक्ष रखती हैं।

सभी पात्र महिला होने का गर्व महसूस करती हैं। स्मिता भारतीय चिंतन को बल देनेवाली पात्र है। वह अपनी पढ़ाई के बलबूते अपनी पहचान तलाशना चाहती है। माता-पिता की मृत्यु के बाद वह बड़ी बहन नमिता के घर शरण लेती है । वहाँ उन्हें अपने प्रति जीजा का व्यवहार उतना अच्छा नहीं लगता। जीजा के द्वारा उसका बलात्कार किया जाता है। तभी वह अपनी अंदर छिपी अस्मिता की तलाश शुरू करती है। वह अपनी मेहनत से अमेरिका पहुँचती है। वहाँ उनका विवाह जारविस नामक एक साइकाट्रिस्ट से हो जाता है। स्मिता का पति एक अमेरिकन पुरुष है, फिर भी स्थिति में बदलाव नहीं। वह केवल अपनी तुष्टि, अपना संतोष चाहता है। वह शारीरिक रूप से भी स्मिता को चोट देती है, जो उसके गर्भपात का कारण बनता है। रिलीफ फ़ॉर एब्यूज़्ड़ विमन में नौकरी करते हुए वह जारविस के खिलाफ केस लड़ती है, परंतु हार जाती है। बीस वर्ष के बाद वह भारत लौटती है और समाज में नवसृजन की ओर कदम बढ़ाती है।

दूसरी पात्र मारियान तमाम मर्दों को अत्याचारी, खुदगर्ज और जालिम नहीं ठहराती है। 'मैं यह मानने को तैयार नहीं थी। ऐसा नहीं था कि मैंने कभी किसी मर्द के हाथों चोट नहीं खाई थी। पर मैं तमाम मर्दों को एक ही खाँचे में डालने को तैयार नहीं थी।' मारियान अपने बचपन में अभाव भोगती आई थी। वह अपनी माँ वर्जिनिया द्वारा प्रताड़ित है। सर्वप्रथम मारियान को मानसिक पीड़ा उसकी अपनी माँ द्वारा दी जाती है। मारियान की शादी इर्विंग ह्विटमैन से होती है। लेकिन इर्विंग अपनी स्वार्थता सिद्ध करने के लिए मारियान को भविष्य के सपने दिखाकर उसे गर्भपात के लिए राजी कर लेता है। यहाँ स्त्री अस्मिता के प्रश्न दूसरे रूप में उभरता है। मारियान और स्मिता दोनों गिरती हैं, लेकिन अपने को संभालने में देर नहीं लगाती। स्मिता के समान मारियान भी अपने पति को कचहरी में घसीटती है और हार की चिंता नहीं करती। मारियान दोबारा विवाह करती है, लेकिन यहाँ भी स्थायित्व नहीं ला पाती। बाद में एक लेखिका के रूप में सफलता प्राप्त करती है।

तीसरा पात्र नर्मदा इस उपन्यास की एक सशक्त पात्र है। नर्मदा, स्मिता और मारियान की तरह उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं थी। वह दर्जिन बीबी के माध्यम से पढ़ना-लिखना सीखती है। बचपन में नर्मदा के माता-पिता चल बसे तो वह अपने भाई भोला के साथ अपनी बहन गंगा तथा जीजा गनपत के यहाँ लायी गयी। पहले दोनों चूड़ी के कारखाने में भेजे गये। फिर भोला की पैसे के प्रति लापरवाही के कारण स्कूल में भर्ती करा दी गयी। नर्मदा तो भाई के बड़ा होने की बाट जोहती है। दोनों में से एक ने भी यह नहीं पूछा था कि जो कमाई वह कर रही थी उससे भी मरदजात का ही पेट भर रहा था। नर्मदा तो भाई को देख-देखकर ही मग्न रहती थी। उसका प्यारा भोला भाई पढ़-लिख जाएगा तो उसे सहारा देगा। जब वह चूड़ी के कारखाने में काम करने लायक नहीं रहती तो वह घरों में काम करने जाती है।

कभी-कभी स्त्री भी स्त्री का शोषण करती है। लेकिन जब वह दर्जिन बीबी (असीमा की माँ) के घर काम करने जाती है तब से जीवन में नया बदलाव आता है। नर्मदा अशिक्षित है, लेकिन जीने की चाह सबसे अधिक उसी के अंदर है। 'कठगुलाब' में नर्मदा ही एक ऐसी पात्र है जो प्रेम करती है और बहुत संवेदनशील है। उनके अंदर दया, करुणा, साहस, क्षमा, क्रोध आदि भाव निहित हैं।

चौथा पात्र है असीमा। उन्हें अपनी माँ-बाप ने सीमा नाम रखा था। लेकिन वह स्वयं असीमा नाम रखा जिसका अर्थ है जिसकी कोई सीमा न हो। असीमा का पिता उसे और उसके भाई असीम को छोड़कर चला गया था। वह किसी और के साथ रहता है। लेकिन यह असीमा की माँ दर्जिन बीबी को दुखद नहीं बनाता। वह एक आदर्श भारतीय नारी है और अपने बच्चों को अच्छी तरह संभालती है। वह व्यक्तिगत आज़ादी को महत्व देती है और असीमा को बिना विवाह किए भी विपिन के साथ रहने की अनुमति देती है। असीमा का भाई माँ को छोड़कर पिता के यहाँ चला जाता है। इस प्रकार असीमा अपने पिता और भाई से नफ़रत करते हुए बड़ी होती है। वह धीरे-धीरे समाज के सभी पुरुषों से नफ़रत करने लगती है । वह कहती है "मर्दों की दुनिया में रहने के लिए होम साइन्स नहीं, कराटे की ज़रूरत है।"

पुरुष पात्र विपिन तो महिला जीवन की समस्या से अवगत है। वह महिलाओं का समर्थन करता है। विपिन के शब्दों में 'मैं मर्द भले हूँ , पर हरामी नहीं , मुझे अपनी मर्दानगी साबित करने का मौका कभी नहीं दिया गया, फिर भी मैं नामर्द नहीं हूँ'। उसके मन में पिता बनने की इच्छा है । लेकिन अपनी माँ-बाप की पारिवारिक समस्याओं से परिचित होने के कारण वह शादी करने से डरता है। विपिन बिना शादी किये ज़िंदगी में बाँधनेवाली एक युवती की तलाश में था। अंत में नीरजा उससे जुड़ जाती है। लेकिन चाहकर भी वह माँ नहीं बन सकती। बाद में नीरजा एक डॉक्टर से शादी कर लेती है।

नमिता एक अन्य पात्र है, जो नारी अस्मिता के मायने तलाशती है। लेकिन इस तरह का बदलाव उसके लिए घातक सिद्ध होता है। वह अपने ही बेटे प्रदीप द्वारा फिर से दबा दी जाती है। भारतीय संविधान में महिलाओं को समानता के अधिकार तो दिए गये हैं , लेकिन सच यह है कि उन्हें हर स्तर पर अपने अधिकार पाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। उपन्यास की सभी स्त्री पात्र पुरुषों से चोट खाकर भी अपराधबोध की जगह प्रतिशोध की भावना ही प्रबल करती हैं। वे स्वाभिमान से जीती हैं।

पुरुष ने तो हमेशा नारी को मुखौटे पहना रखे थे, यह उपन्यास उन्हें उतार फेंकने का साहस भी करता है। नारी केवल सती बनकर नहीं रहना चाहती, वह झाँसी की रानी भी बन सकती है। 'कठगुलाब' बीसवीं सदी का उपन्यास है। इसकी नारी पात्र नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती हैं। आज स्त्री की हालत में बड़ा परिवर्तन दिखाई देता है। आज वे सभी क्षेत्रों में सफलतापूर्वक काम कर रही हैं।

'कठगुलाब' की प्रत्येक स्त्री पात्र को देखें तो ये पात्र स्थितियों से समझौता नहीं करतीं। चुनौतियों को स्वीकार करती हैं तथा अपने अस्तित्व को पहचानने में सफल बन जाती हैं। औरत कितनी भी कठोर बनने की

कोशिश क्यों न करे, वह अपनी संवेदनशीलता को छिपा नहीं सकती। इसे ही पुरुष उसकी कमज़ोरी समझकर अपनी ताकत बना देता है।

'कठगुलाब' मृदुलाजी के स्त्री-विमर्श के दृष्टिकोण से एक सफलतम प्रयास है। देशकाल के अतीत नारी की जिजीविषा की अभिव्यक्ति करने में वे सफल बन गई हैं। स्त्री शाक्तिकरण के युग में इसकी प्रासंगिकता और भी बढ़ गई है ।

संदर्भ

1.कठगुलाब, मृदुला गर्ग (नवाँ संस्करण), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली।
2.मृदुला गर्ग के साहित्य में चित्रित समाज, डॉ.किरण बाला जाजू, अमल प्रकाशन, कानपुर।
3.श्रृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

♦अध्यापिका
चिन्मया विद्यालय,कुन्नुमपुरम

(पृ.सं.34 के आगे)

शिकायत करता है -"ऐसा भी क्या पढ़ रही हो जिसे पढ़े बिना तुम्हारा जन्म अधूरा रह जायेगा। कितनी भी किताबें पढ़ लो, तुम्हारी बुद्धि में कोई बढ़ोत्तरी होनेवाली नहीं है। रहोगी तो तुम वही.... "[8] यह कहानी स्त्री की उस विडबना को उद्घाटित करती है, जिसके चलते हर कदम को सिर्फ इसलिए गलत करार दे दिया जाता है कि वह एक स्त्री है। यह एक गतिशील इंसान के प्रति ईर्ष्या से उत्पन्न आक्रोश की कहानी है।

सुधाजी ने अपनी कहानियों में स्त्री की मध्यवर्गीय मानसिकता और आधुनिक स्त्री जीवन की यंत्रणा को प्रामाणिकता के साथ चित्रित किया है। उन्होंने अपनी कहानियों में नारी-पीड़ा को उजागर करते हुए उसकी संवेदना के हर एक पहलू को छुआ है। सुधाजी का लेखन, जीवन से, जीवन की तकलीफ से उपजा है। उनकी कहानियों की भाषा में ऐसा प्रवाह और सहजता है कि सहृदय पाठक उसमें पूर्णतया डूबता है। सुधाजी वर्तमान की स्त्री के हर सवाल से स्वयं जूझती हैं और अपनी रचनाओं में उन्हें उतारने का प्रयत्न करती हैं। सुधा अरोड़ा जी की कहानियाँ अपनी अंतर्वस्तु में परिवार और रोज़मर्रा को इतना विस्तृत बयान किया है कि उनकी सारी कहानियाँ मिलकर एक महाकाव्य बनती हैं। ये कहानियाँ वस्तुतः उस संघर्ष की पुनर्पीठिका है, जो स्त्रियों की मुक्ति केलिए बहुत लम्बे समय तक ज़ारी रहनेवाली हैं।

सन्दर्भ

1. वर्तमान साहित्य (मासिक पत्रिका, सितबर 2010, पृ.4), अलीगढ़।
2. रघुवीरदयाल वार्ष्णेय, स्त्री विमर्श साहित्यिक और व्यावहारिक सन्दर्भ, पृ.153, पूजा प्रकाशन, कानपुर।
3. सुधा अरोड़ा,काला शुक्रवार (कहानी संग्रह, वर्चस्व, पृ.112), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. वही, पृ.113
5.आधी आबादी, पृ.119
6. वही
7. रहोगी तुम वही, पृ.105
8. वही, पृ.106

♦सहायक आचार्य,
हिन्दी विभाग,
महाराजास कॉलेज,एरणाकुलम ।

'दौड़' उपन्यास में नारी संघर्ष का चित्रण

♦ डॉ. रम्या प्रसाद

आजकल हिंदी साहित्य में विशेष संवेदनाओं के कारण महिला लेखन के लिए महत्वपूर्ण स्थान मिला है। हिंदी साहित्य की वरिष्ठ लेखिका श्रीमती ममता कालिया ने कथा साहित्य में बहुत ख्याति पायी है। वे कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध, कविता और पत्रकारिता आदि लगभग सभी विधाओं में हस्तक्षेप रखती हैं। हिन्दी कहानी के परिदृश्य पर उनकी उपस्थिति सातवें दशक से निरन्तर बनी हुई है। लगभग आधी सदी के कालखण्ड में उन्होंने अधिक कहानियों की रचना की है। उत्तराधुनिक काल की लेखिकाओं में ममता कालिया का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। आधुनिक नारी के संघर्ष, पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी के सम्बंध, सांकृतिक संकट, मूल्य-च्युति, पुरानी पीढ़ी तथा नयी पीढ़ी की टक्कर आदि विषयों पर उन्होनें कलम चलायी। उन्होंने अपनी रचनाओं में नारी समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। नारी का स्थान आज के समाज में कैसा रहा है, यह दिखाते हुए उसकी यथार्थ स्थिति का अंकन उन्होंने किया है। सच्चे अर्थों में उन्होंने आधुनिकताबोध को अपनी कृतियों में अभिव्यक्त किया है।

ममता जी के साहित्य का मुख्य लक्ष्य केवल नारी की समस्याओं का अंकन करना नहीं, बल्कि उसे पुरुष के बराबर का स्थान देना भी है। "वह अपने साहित्य द्वारा नारी को पुरुष के समानान्तर दिखाना चाहती है और नारी को पुरुष के साथ समानांतर दिखाना ही उनके साहित्य-सृजन का उद्देश्य रहा है। कई प्रकार के नारी रूपों को, उनके संघर्ष को दिखाकर वह अपने इस उद्देश्य तक पहुँचने का प्रयास करती है।"[1] ममता जी अपने आप को महिला कहानीकार या महिला साहित्यकार कहने पर आक्षेप करती हैं। उनके अनुसार जब महिलायें सभी क्षेत्रों में पुरुष के साथ काम करती हैं, तो उसे अलग से महिला कहानीकार कहने से क्या फायदा? उसे तो सिर्फ़ कहानीकार या सिर्फ साहित्यकार कहना चाहिए। आधुनिक काल की महिलायें पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाते हुए सभी क्षेत्रों में कार्य कर रही हैं। परिवार का हर एक सदस्य नारी से अलग-अलग प्रकार की अपेक्षायें रखता है। नौकरीपेशा नारियों की अलग समस्यायें होती हैं। अपने घर में भी सभी संघर्षों में दबती-पिसती आधुनिक नारी के चित्र ममता कालिया के कथा साहित्य में खूब मिलते हैं।

'दौड़' उत्तराधुनिक ज़माने की पृष्ठभूमि में रचित एक मर्मस्पर्शी उपन्यास है। इसमें जीवन का संधर्ष चित्रित है। राकेश पाण्डेय एक अखबार का संपादक है। उनकी पत्नी रेखा एक स्कूल टीचर है। उनके दो बेटे हैं - पवन और सघन। वे इलाहबाद के एक मध्यवर्गीय परिवार में रहते हैं। पवन और सघन इस इक्कीसवीं सदी की व्यावसायिकता और आजीविकावाद के दौर के और बहुराष्ट्रीय कंपनियों से जुड़े भारतीय चरित्र हैं। एम.बी.ए के बाद पवन ने अहमदाबाद में नौकरी में प्रवेश किया। अहमदाबाद में पवन अपने मित्रों के साथ रहता था। पवन और उनके सभी मित्र महत्वाकांक्षी हैं। इस सिलसिले में पवन का परिचय स्टैला ड़िमैलो से हुआ। स्टैला 'इंटरप्राइज़ कॉरपरेशन' में बराबर की

पार्टनर थी। कुछ दिनों केलिए छुट्टी माँगकर पवन अपने घर में गया। लेकिन घर में पवन को बिलकुल अच्छा नहीं लग रहा था। यह देखकर रेखा अत्यंत दुःखी बन जाती हैं। राकेश रेखा को याद दिलाता है कि पवन नयी पीढ़ी का प्रतीक है, जो अपनी जड़ों से कटकर 'कैरियर ओरियंटेड' जीवन बिताने का सपना देखता है। यह भी जल्दी ही मालूम हो गया कि पवन देश में ही परदेशी-सा हो गया है। सघन तो सभी समय अपने कैरियर पर विचार करता है। पवन वापस अहमदाबाद में पहुँचता है तो वह स्टैला को शादी करने का निर्णय लेता है। स्टैला के माँ-बाप इस निर्णय को स्वीकार करते हैं। लेकिन राकेश और रेखा इस निर्णय पर विरोध प्रकट करती हैं। यह खबर दिए बिना ही रेखा ने राजकोट जाने का निश्चय किया। स्टैला का परिचय देते हुए पवन ने रेखा से कहा कि "माँ, स्टैला मेरी बिज़नेस पर्टनर, लाइफ पार्टनर और रूम पार्टनर तीनों है।"[2] यह सुनकर रेखा संघर्ष में फँस जाती है। रेखा को स्टैला ज़रा भी पसंद न आती। लेकिन पवन ने स्पष्ट रूप में कहा कि "सती और सावित्री के गुण तो उसमें दिख नहीं रहे, अच्छी कैरियरिस्ट भले ही हो।"[3] रेखा अत्यंत दुखी हो जाती है और वह वापस इलाहबाद जाती है। पवन अपने विवाह का निमंत्रण पत्र माँ-बाप को भेजता है। ऐसे पवन की शादी होती है। शादी के बाद पवन स्टैला को लेकर इलाहबाद में गया। कुछ दिनों के बाद वे दोनों अपने-अपने काम केलिए अलग-अलग स्थानों पर गये। रेखा को यह भी उचित न लगती। वह कहती कि "यह बार-बार अपने को डिस्टर्ब क्यों करता हो। अच्छी-भली कट रही है सौराष्ट्र में। अब फिर एक नई जगह जाकर संघर्ष करेंगे?"[4] सघन भी अपनी शिक्षा केलिए घर से बाहर गया। सघन वापस घर आने पर पवन के समान अपने घर में 'देस में ही परदेसी' जैसा व्यवहार करता है। रेखा को मालूम हो जाता है कि उस कस्बे में सब बूढ़े माता-पिता अकेले जीवन बिताते हैं। राकेश और रेखा अपने पुत्र को वापस घर में आने केलिए कहती हैं। लेकिन पुत्र अपना फैसला सुनाते हुए कहता है - " माँ जब आने लायक हो जाऊँगा, तभी आऊँगा। तुम्हें थोड़ा इंतज़ार करना होगा।"[5] इस मर्मस्पर्शी कथन के साथ 'दौड़' उपन्यास समाप्त हो जाता है।

'दौड़' उपन्यास की प्रमुख नारी पात्र रेखा पुरानी पीढ़ी का प्रतीक है। उसे हमेशा ही घर और बच्चों की चिंता या सोच है। वह अपने पति और बच्चों की सफलता को ही अपने जीवन की सफलता मानती है। रेखा की सहयोगी अध्यापिकाओं के बच्चे पढ़ाई में बहुत पीछे थे और किसी को भी अच्छी नौकरी नहीं मिली थी। जीवन के पचपनवें साल में रेखा को यह सोचकर बहुत अच्छा लगता कि उपने दोनों बच्चे पढ़ाई में अव्वल रहे और उन्होंने खुद ही अपने कैरियर की दिशा तय कर ली। इस पर उसे गर्व है। रेखा जैसी आदर्श पत्नियों के जीवन पति और बच्चों केलिए समर्पित हैं। वह ज़िन्दगी भर पति और पुत्रों की बावर्ची,धोबिन और ज़ामादारिन बनी रही है। रेखा को हमेशा ही अपने पुत्रों के भविष्य की चिंता थी, किंतु दोनों बेटे अपने कैरियर के बारे में सोचते थे। जब उसे मालूम होता है कि पवन स्टैला नामक एक लड़की से प्रेम करता है तो वह सीधे अहमदाबाद चली जाती है। रेखा के अनुसार उसे रोकना ज़रूरी है। न उन्होंने लड़की देखी थी, न उसके घरबार। तिस पर उसकी माँ सिंधी और पिता ईसाई थे। एक ऐसी लड़की को बहू मानने को रेखा तैयार नहीं होती। शादी के पहले ही स्टैला का पवन के फ्लैट में रहना उसे अनुचित लगा। इसलिए उस शादी को रोकने की वह

भरसक कोशिश करती है, पर पवन के तर्कों के सामने वह कामयाब नहीं होती। पवन और स्टैला के अनुसार शादी एक 'डील' है। लेकिन रेखा को यह समझता नहीं है। रेखा कहती है कि "डील का क्या मतलब है। तुम अभी शादी जैसे रिश्ते की गंभीरता नहीं जानते। शादी और व्यापर अलग-अलग चीज़ें हैं।"[6] स्टैला के साथ पवन के विवाह में माँ-बाप की भूमिका सिर्फ आमंत्रित अतिथि जैसी थी। अंत में लाचार होकर रेखा को पवन का फैसला मानना पड़ता है। यही नहीं, रेखा की अपेक्षायें अपनी संतानों की उमंगों से टकराकर कदम-कदम पर टूट जाती है।

'दौड़' पीढ़ियों के संघर्ष की कहानी है। रेखा शिक्षित, प्रगतिशील मध्यवर्गीय विभाग का प्रतिनिधित्व करती है। फिर भी संतानों की दृष्टि में वे पुरानी पड़ गयी हैं। पवन और सघन आधुनिक पीढ़ी के प्रतीक हैं। माँ-बाप और संतानों के बीच के संबंधों में भी आत्मीयता और भावनात्मकता कम होती जा रही है। आज इस स्थिति को 'जनरेशन गैप' की संज्ञा देते हैं। माँ का दिल यह समझने में असमर्थ है और उसका दिल व्याकुलता से हमेशा तड़पता है। अर्थ केंद्रित जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा की वजह से आपसी सम्बधों में संवेदनशून्यता और मूल्यहीनता आ गयी हैं। इस प्रकार रेखा उस पुरानी पीढ़ी का प्रतीक है, जो नयी पीढ़ी की दौड़ में किनारे कर दी जाती है।

भारतीय परंपरा में शादी पारिवारिक अवधारणा के साथ जीने और संतुष्टि के साथ जीने केलिए मानी जाती है। शादी भावुकता के साथ जीवन जीने और रिश्तों की ऊष्मा को महसूस करने केलिए जानी जाती है। लेकिन आधुनिक पीढ़ी अपनी आज़ादी की संतुष्टि को ज़्यादा महत्व देती है। स्टैला इसका एक उत्तम उदहारण है। वह हर प्रकार से आधुनिक नारी है। वह शादी जैसे पवित्र बंधन का महत्त्व नहीं मानती। वह रसोई का काम नहीं जानती, सीखना भी नहीं चाहती। रेखा उसे एक लड़की के बजाय मैनेजर मानती है। स्टैला स्त्री-पुरुष की बराबरी में विश्वास करनेवाली है। स्त्रियों केलिए स्त्रियोचित और पुरुषों केलिए पुरुषोचित कार्यों पर वह विश्वास नहीं करती। घर में जब कभी माँ-बेटे के बीच छोटी-छोटी बातों को लेकर बहस हुआ करती थी, वह बिलकुल हस्तक्षेप नहीं करती थी। उसकी ज़्यादा दिलचस्पी समस्याओं के ठोस निदान में थी। उसने सास की कई कहानियाँ कंप्यूटर पर उतारकर उनकी फ्लॉपी कर दी। फिर उसने ससुर को कंप्यूटर का ऑपरेशन सिखाया और सघन के लिए कंप्यूटर की सामग्री मँगवा दीं। स्टैला इक्कीसवीं सदी की युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है। उसे अपने कैरियर में कामयाबी मिली है, परन्तु आपसी संबन्धों की भावनात्मकता और आत्मीयता को बनाये रखने में असफल हो जाती है। नयी पीढ़ी की अर्थ केंद्रित मानसिकता स्टैला के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है।

'दौड़' उपन्यास के माध्यम से ममता कालिया वर्त्तमान समाज की सच्चाई को व्यक्त करना चाहती हैं। पुराने ज़माने में शिक्षा का इतना बोलबाला नहीं था और लोगों में अपना घर-परिवार छोड़कर दूर किसी शहर में जाकर आजीविका की तलाश करने की महत्वकांक्षा नहीं थी। बदलाव के साथ आए औद्योगिकरण ने ग्रामीण अंचल तथा छोटे कसबों से लोगों को शहरों में आने का निमंत्रण दिया। इक्कीसवीं सदी की आहट के साथ आर्थिक उदारीकरण के दौर ने शहरों में रोज़गार के अधिक अवसरों को उपलब्ध कराया। परिणामस्वरूप

नयी पीढ़ी के नवयुवक-युवतियों में नए अवसरों को प्राप्त करने की अभिलाषा बलवती हुई ओर वे व्यापर, प्रबंधन की शिक्षा की ओर उन्मुख हुए।

'दौड़' में नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी को अधिक महत्त्व नहीं देती है। वह अपने कैरियर को अधिक महत्त्व देती है। आज की नयी पीढ़ी पुरानी संस्कृति और सभ्यता को नहीं चाहती,उसे सिर्फ उपभोक्ता संस्कृति चाहिए। माता-पिता एक तरफ तो अपने बच्चों को विदेश भेजकर दुखी रहते हैं कि वे वहाँ जाकर अपने घर-परिवार को भूल जाते हैं तो दूसरी ओर अपने मन को तसल्ली देने केलिए उसी पर खुश भी होते हैं। माता -पिता ने पहले बड़े-बड़े सपने देखकर ही अपने बच्चे को एम.ब.ए करके किसी बड़े शहर में खूब कमाने भेजा, लेकिन उन्हें अपना अकेलापन सताने लगा। सिर्फ रेखा ही नहीं, बल्कि आज सभी माता-पिता ऐसे संघर्ष में पड़ जाते हैं। इसका मर्मस्पर्शी चित्रण ममता कालिया ने किया है।

भूमंडलीकरण, आर्थिक उदारीकरण, व्यावसायिक संस्कृति, उपभोक्तावादी संस्कृति आदि के चंगुल में फँसे समाज ने पारंपरिक मूल्यों को पीछे धकेलकर नए जीवनबोध को अपना लिया है। इसमें एक तरफ देखें तो मनुष्य का एक पैर तो विकास तथा सफलता की ऊँचाई पर उठा है, तो दुसरी तरफ़ देखें तो दूसरा पैर पारंपरिक ज़मीन पर ही है। इस तरह सफलता के सुख के साथ दोनों के बीच उलझते जीवन की व्याथा कथा है 'दौड़'। ममता कालिया नारी संवेदना के विविध पक्षों को अपनी रचनाओं में उजागर करती हैं। स्त्री जीवन के प्रति उनकी पैनी नज़र होने के कारण उनकी रचनाओं में नारी वर्ग प्रमुख रूप से उभरकर सामने आता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. फैमिदा हीजापुरे, ममता कालिया व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ.सं. 15; सूर्य प्रकाशन, दिल्ली।
2. ममता कालिया, दौड़, पृ.सं. 51; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. वही, पृ.सं. 57
4. वही, पृ.सं. 65
5. वही, पृ.सं. 85
6. वही, पृ.सं. 58

♦गेस्ट लेक्चरर, हिंदी विभाग,
बी सी एम कॉलेज, कोट्टयम

(पृ.सं.19 के आगे)

सकते हैं प्रभा जी ने नारी-विमर्श को केन्द्र में रखकर महिला-लेखन के क्षेत्र में अपार प्रतिष्ठा पाई है। उनके उपन्यासों में स्त्री-मुक्ति का संघर्ष घर-परिवार से प्रारंभ होता है। फिर वे समाज की विविधायामिता में अपना अस्तित्व गढ़ती हैं। समाज की मुख्य धारा में प्रविष्ट होती हैं। उन्होंने नारी की वास्तविक स्थिति का अंकन कर नयी युगचेतना का परिचय दिया है।

सन्दर्भ

1.उत्तर शतीय उपन्यासों में स्त्री, पृ.सं. 43; विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

2.स्त्री पक्ष, जनसत्त सबरंग, जून 1999, पृ.सं. 21

3.आओ पेपे घर चले, पृ.सं. 52; सरस्वती प्रकाशन, दिल्ली।

4.प्रभा खेतान और उनका साहित्य - परवीन मालिक, पृ.सं.148; ऋषभचरण जैन एवं संतति, नयी दिल्ली।

♦ अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
एस.बी. कालेज,
चंगनाशेरी, केरल -686101

मीराकान्त के नाटक 'नेपथ्यराग' में चित्रित समस्याएँ

♦ डॉ.अंजली.एन

हिन्दी साहित्य में नाट्यलेखन की एक सुदीर्घ परंपरा दिखाई देती है । इस परंपरा में भारतेंदु युग से लेकर अभी तक अनेक महिला नाटककारों ने नाट्य रचना की है । समकालीन महिला नाटककारों में मृदुला गर्ग, मन्नू भंडारी, कुसुम कुमार, मीरा कांत, विभा राणी, नदीरा जहीर बब्बर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन नाटककारों द्वारा रचित नाटक का कथ्य स्त्री समस्या तक सीमित नहीं, अपितु इनके नाटक व्यापक विषय-भूमि को लेकर रचे गये हैं। इनके नाटकों की कथावस्तु अलग स्थितियों-परिस्थितियों में विकसित हुई है, लेकिन उनमें भारतीय परंपरा का विस्तार है, जो उनके नाटकों को एक दूसरे से जोड़ता है। इनके नाटकों में परंपरा के भीतर से फूटती हुई आधुनिकता दिखायी पड़ती है।

महिला नाटककारों में मीराकांत का नाम उल्लेखनीय है। आपने अपनी रचनाओं में मुख्य रूप से नारी जीवन की त्रासदी को चित्रित करने का प्रयास किया है। पुरुष मेधा के कारण समाज में स्त्री को अपनी योग्यता के अनुसार कभी भी स्थान नहीं मिलता है। पुरुष के समान अधिकार उसे कभी भी प्राप्त नहीं होता है। स्त्री सामान्यतया पुरुष द्वारा चालित समाज और धर्म की आड़ में दूसरे दर्जे की वस्तु रह जाती है। मानसिक और बौद्धिक शोषण भी चल रहा है। मीराकान्त ने अपने कथा साहित्य तथा नाटकों द्वारा हाशिए कृत लोगों को मुख्यधारा पर लाने की कोशिश की है। मीराकांत संवेदनशील तथा अपने समय पर चिंतित लेखिका हैं। संघर्षशील स्त्री और समाज की मुख्यधारा से छूटे हुए व्यक्ति इनके साहित्य की धुरी रहे हैं। यही कारण है इन्होंने उपेक्षित और प्रताड़ित नारी को केन्द्र में रखकर साहित्य-सृजन किया। इतिहास पुराण काल से लेकर अभी तक स्त्री पुरुष मेधा समाज के शोषण की शिकार है। स्त्री की इसी शोषण गाथा को मिथकीय कथाओं के आधार पर चित्रित करने का प्रयास आपने किया है।

मीराकांत के नाटक 'नेपथ्यराग' पुरुष सत्तात्मक समाज की मानसिकता का उद्घाटन करने के साथ-साथ नारी मानसिकता के दुर्बल पक्ष को भी उजागर कर देता है। नाटक की केंद्र पात्र खना जिसके इर्दगिर्द बाकी सारे भ्रमण करते रहते हैं, पहले एक शक्त नारी के रूप में प्रस्तुत होती है। खना बीस वर्ष की लड़की है। उसके व्यक्तित्व में आत्मविश्वास और चेहरे पर तेजस्विता की कान्ति है। वह विनम्र है, साथ ही सुदर्शना भी। खना जीवन में अवनी से अंबर तक आत्मसात करना चाहती है और अपनी स्थूल आँखों को ज्ञानचक्षु बनाना चाहती है। अपने भीतर की इच्छा को प्रज्वलित करती हुई दुनिया की तमाम रीति-रिवाज़ों को ठोकर देकर अपनी लक्ष्य-प्राप्ति की ओर निर्भीक अग्रसर होनेवली है। अपनी विलक्षण बुद्धि एवं एकनिष्ठ जिज्ञासा के कारण चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य के सभारत्न वराह मिहिर की शिष्या बनने का सौभाग्य उसे प्राप्त होता है। लेकिन परिस्थितियाँ शीघ्र ही बदल जाती हैं। वराह मिहिर के पुत्र पृथुयशस को, जो स्वयं ज्योतिष क्षेत्र में कार्य कर रहा है, खना पसन्द आती है। पृथुयशस खना के ज्ञान से ढँके अक्षत सौन्दर्य के प्रति आसक्त है।

मालव गणनायक विक्रमादित्य के इच्छानुसार पृथुयशस को नयी वेदशाला केलिए वास्तु के अनुरूप

स्थान का चयन करने केलिए शीघ्र उज्जयिनी प्रस्थान करना है। जाने से पहले वह खना से शादी करना चाहता है और वह अपने मन की बात पिता वराह मिहिर से कहता है। वराह इस शादी केलिए अनुमति नहीं देते हैं। खना से पहली भेंट होते वक्त ही वराह मिहिर का पुरुषवर्चस्ववादी व्यक्तित्व सामने आता है।

पहली बार भेंट होते वक्त खना वराहमिहिर से ज्ञान का आश्रय माँगती है तो वराह अचंभित होकर कहते हैं -"ज्ञानमार्गी उसकेलिए सामान्य जीवन का त्याग करना पड़ता है। नहीं ज्ञान के साथ निभा नहीं पाता है सामान्य जीवन।"[1] इन वाक्यों से पता चलता है कि सामान्य जीवन जीना, घर-परिवार संभालना ही स्त्रियों का कर्तव्य है। इतना कहने पर भी वराह खना को ज्योतिष शास्त्र में दीक्षित करने का वचन देता है। खना ज्योतिष में वराह की शिष्या बनी और उस क्षेत्र में पारंगत बनी। पुरुषमेधा समाज इसे भी पच नहीं पाया। खना की कडी मेहनत को भी उन्होंने स्वांग में बदल दिया और कहा गया कि खना ने वराह मिहिर द्वारा तैयार किया गया ज्योतिषमति तैल पी लिया है। इसी बीच पृथुयशस पिता से शादी की बात करते हैं तो वराह मिहिर पुत्र से कहते हैं- "कन्या का ग्रह अधिक प्रबल है। तुम ज्योतिष में परंपरावादी लीक पर चल रहे हो ..... तुम दोनों एक ही मार्ग के पथिक हो। उसे उसी मार्ग पर अपने से आगे निकलता देखने का साहस जुटा पाओगे।"[2] इन संवादों से पता चलता है कि एक ही क्षेत्र में काम करते हैं तो पुरुष आगे बढ़ने केलिए कभी भी अनुमति नहीं देता है। दूसरी ओर इस बात की ओर भी संकेत है कि कुलीन स्त्री कभी भी अपनी शादी का निर्णय अपने आप नहीं लेती है। पृथुयशस वराह से कहता है- "कुलीन परिवारों की कन्याओं केलिए संबन्धों का प्रस्ताव तो अभिभावक करते हैं।"[3]

दूसरी ओर शादी की बात सुनकर खना की प्रतिक्रिया तो अलग ढंग से है। एक बीस वर्षीय सामान्य लड़की के समान खना के मन में शादी की चिन्ता के बदले ज्ञान अर्जित करने की इच्छा है। खना एक निश्चित ध्येय लेकर उज्जयिनी आयी थी। उसके मन में यही विचार है कि विवाह हो जाने से उसका अध्ययन अधूरा छूट जायेगा। वह सुबन्धु काका से पूछता है- "क्या विवाह अनिवार्य है?"[4] चाचा सुबंधु भट्ट के स्नेहपूर्ण दबाव में आकर विवाह के लिए खना अपनी इच्छाओं को दबा देती है न वह यह जानती ज़रूर थी कि विवाह के पश्चात् नक्षत्रों की दूरी नापना उतना आसन नहीं जितना पहले था। फिर भी खना उसके आगे सर झुका देती है। खना अपने मार्ग में आनेवाली अडचनों को पार करने में सफल नहीं होती है, क्योंकि पृथुयशस जैसा पंडित एवं ज्योतिषी पति के रूप में प्राप्त हुआ और वराह मिहिर जैसा सभा रत्न श्वसुर के रूप में।

सुबन्धु कहता है कि यह समाज पुरुषों का संसार है। लेकिन यह सुनकर खना के मन में यह शंका उठती है कि उसने जो ज्ञानमार्ग चुना है उसमें स्त्री-पुरुष का भेद क्यों है? इसके जवाब के रूप में सुबन्धु कहता है- "भेद व्यक्ति में नहीं, दृष्टि में है। यह समाज तुम्हें व्यक्ति के रूप में देखे या युवती के रूप में इसका निर्णय तुम कभी नहीं कर पाओगी।"[5] इन वाक्यों से स्पष्ट है कि खना हो या कोई भी स्त्री हो पुरुष मेधा समाज उसे मात्र स्त्री के रूप में देखगा। स्त्री को अपने समान दर्जे के व्यक्ति मानने केलिए तथाकथित पुरुष तैयार नहीं है । इस बात की पुष्टि केलिए नाटककार तीन पात्रों को हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं - खना, मेधा और मेधा की माँ।

मेधा आधुनिक पात्र है, जो दफ्तर में अपने विभाग की प्रभारी है और कमर्ठ नारी है। मेधा ऑफिस में अपने अधीनस्थ पुरुष कर्मचारियों से बहुत परेशान ग्रस्त है। मेधा अपने ऑफिस की समस्याएँ माँ से कहती

है तो माँ मेधा को समझाती हैं कि यह तो मात्र मेधा की या इस ज़माने की समस्या नहीं है। माँ की राय में यह तो हर जमाने की समस्या है। यहाँ इन आधुनिक पात्रों के ज़रिए नाटककार यही कहना चाहती हैं कि ज़माना पुराना हो या नया, समाज में स्त्री की स्थिति में उतना बदलाव तो नहीं आया है। इसी प्रसंग से जड़कर माँ मेधा को खना की कथा सुनाती हैं।

शादी के बाद खना बहुत आशा-आकांक्षांओं को लेकर वराह के घर में प्रवेश करती है, क्योंकि अब गुरु श्वसुर भी है, अध्ययन केलिए अधिक समय मिलेगा। शादी के कुछ दिनों बाद पृथुयशस विक्रमादित्य के इच्छानुसार उज्जयिनी चला जाता है। पृथुयशस के चले जाने पर खना अच्छी तरह घर संभालती है और अध्ययन-कार्य भी करती है, जिसे देखकर स्वयं वराह मिहिर कहते हैं कि घरेलू दायित्वों और स्वाध्याय का अच्छा सन्तुलन है यह खना।

गैड प्रदेश घोर वर्षा के कराल हाथों में डूब जाता है। यह समाचार सुनकर सम्राट विक्रमादित्य छद्म वेश में देश की वास्तविक स्थिति जानने केलिए निकल पड़ता है। साथ ही वराह मिहिर के घर भी आते हैं। बातचीत के बीच में वराह मिहिर से देश की दुस्थिति के सबन्ध में राजा ने प्रश्न किया। तब वहाँ खड़ी खना ने कहा कि हेमन्त ऋतु में वर्षा घोर अपशकुन है। यह स्थानीय राजा की मृत्यु की दुःसूचना देती है। कुछ दिनों के अन्दर गैड प्रदेश के राजा स्वर्गवासी हुए। खना का प्रवचन सच निकलता है और महाराज उससे प्रभावित होकर अपने राजसभा का रत्न बनवाना चाहते हैं।

राजमहल में खना की बातचीत विक्रमादित्य की पत्नी महादेवी से होती है जिसके बीच भर्तृहरि और पिंगला की कहानी आती है। महादेवी ने कहा कि भर्तहरी की पत्नी एकनिष्ठ नहीं थी, इसलिए भर्तृहरि ने संन्यास ले लिया। अचानक खना के मन में यह बात आती है कि कभी कोई स्त्री ऐसा अनुभव करे कि उसके पति उससे नहीं किसी दूसरे से प्रेम करता है तो क्या समाज उसे इसके आधार पर संन्यास लेने की अनुमति देगा? उसका उत्तर भी हमारे पास है कि कभी नहीं देगा।अगर ऐसा करे तो भी समाज स्त्री को ही दोषी कहेगा। खना के इसप्रकार के प्रश्न सुनकर महादेवी आश्चर्यचकित हो जाती है और वह खना से कहती है- "तुम स्त्री की बात कर रही हो। उनकी संख्या न जाने कितनी हो। राष्ट्र की महादेवी हूँ तो क्या संभवतः मैं भी ..... इतने गहरे प्रश्न मत छेड़ो। ऐसा तो जीवन दूभर हो जायेगा। जब पृथ्वी के प्रशन समझ से बाहर हैं तो उन्हें आकाश के ग्रहों पर छोड़ देना पड़ता है।"[6] नारी चाहे महारानी ही क्यों न हो, पुरुषमेधा समाज के अधीन ही है।

खना को सभासद के रूप में समाज क्या स्वीकारेगा? इस प्रश्न को लेकर स्वयं राजा विक्रमादित्य तो चिन्तित है। वह अपनी पत्नी से कहता है- "विवाहिता ज्ञानमार्गी स्त्री को सभासद के रूप में न जाने कौन कितना स्वीकार करेगा। ..... सत्ता के केन्द्र में एक युवती। अपनी बौद्धिक प्रतिभा के बल पर!"[7] फिर भी वह अपने मन की बात वराहमिहिर से कहता है। वराह यह बात सुबन्धु को बताता है।

एक दिन खना सुबन्धु के घर आती है। सुबन्धु कहता है कि तुम्हारी भविष्यवाणी से राजा भी प्रभावित है। यह सुनकर भी खना उदास दीखती है और वह कहती है कि जब शादी हो गयी तो यही सोचा था कि ज्योतिर्विद परिवार में जा रही हैं तो निरन्तर ज्योतिष संबन्धी बातों की चर्चा रहेगी। खना को लगता है कि शादी के बाद खना कहीं खोती जा रही है। अब वह अपने गुरुसे अधिक ज्ञानचर्चा नहीं कर पाती है, केवल स्वाध्याय पर ही निर्भर है। सुबन्धु खना से कहता है कि

राजा ने सभासद के रूप में उसे चुना है। खना खुश हो जाती है।

एक स्त्री को सभासद बनाने का निर्णय सुनकर पुरुष सत्तात्मक समाज भौंह चढ़ाता है। नाटक में पुरुष सत्तात्मक समाज का प्रतिनिधित्व करता है विक्रमादित्य की राजसभा का नवरत्नमंडल। नवरत्नमंडल का प्रत्येक सदस्य अपने-अपने कार्यक्षेत्र में प्रबल और प्रगल्भ है। नाटक के ग्यारहवें दृश्य में विक्रमादित्य की राजसभा का चित्रण है जहाँ खना को राजसदस्य बनाने को लेकर चर्चाएँ चल रही हैं। धन्वन्तरि, घटखर्पर, क्षपणक, वररुचि जैसे रत्न इस बात को व्यंग्यात्मक ढंग से लेते हैं। क्षपणक कहता है - "आज तक राजसभा में सभासद के रूप में कभी कोई स्त्री नहीं रही है।"[8] अर्थात् परंपरा में अभी तक कोई भी स्त्री सभासद के रूप में नहीं आयी है, अगर आयी है तो भी अपने वैदुष्य के कारण नहीं। धन्वन्तरि तो यही जानना चाहता है कि इसमें वराहमिहिर को कोई आपत्ति नहीं है? घटखर्पर व्यंग्य करते हुए करता है कि व्यक्तिगत रूप से वराह को इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी, क्योंकि वराह ने स्वयं लिखा है कि स्त्रियाँ सब अंगों से पवित्र हैं।

इस प्रकार खना को राजसभासद बनाने को लेकर नवरत्नों के बीच हलचल चलता है। स्त्री से विरोध नहीं, मगर सभा रत्न के रूप में स्वीकारना मुश्किल है। वे यह नहीं चाहते हैं स्त्री रत्न के रूप में सम्मानित हो। वह केवल अलंकरण मात्र रह सकती है, मेधाशक्ति से वह कुछ पाए, यह उन्हें स्वीकार नहीं। वराह मिहिर भी इस षड्यंत्र में शामिल हाते हुए नज़र आते हैं। जब राजा इस विषय में वराह की राय पूछते हैं तो वह कहता है-"इस सन्दर्भ में उपस्थित अन्य नवरत्नों के मत में ही मेरा मत है।"[9] यह सुनकर राजा निराश हो जाते हैं और अपने राष्ट्र की स्त्रियों की दुर्दशा को देखकर चिन्तित भी। उनकी प्रतिक्रया है "आकाशमंडल के नवग्रहों की भाँति मैं राष्ट्र के तेज को नवरत्नों के रूप में छाँटकर इस सभा में लाया था। ज्ञान-विज्ञान, साहित्य और कला के मर्मज्ञ गुणीजनों की उदार दृष्टि यदि इस बिन्दु पर आकर कुंठित हो रही है तो सर्वसाधारण इस आधी जनसंख्या के बारे में क्या सोच पाएगा?"[10]

घर लौट आकर वराह चिन्ता में मग्न रहता है कि वह स्वयं क्यों अन्य नवरत्नों की राय से सहमत हआ? वराह सोचता है कि कौन-सी डोर हम सबको मन ही मन बाँधती है? संस्कार, मूल्य, रूढियाँ, जिन्हें हम परंपरा कहते हैं? हम बुद्धि से सिद्धान्तों की रचना करते हैं, किन्तु हृदय से हम केवल संस्कारों से बधे रहते हैं। इस प्रकार असमंजस्य में खड़े वक्त खना आती है। इस दृश्य को नाटककार ने प्रतीकात्मक ढंग से चित्रित किया है। मंच पर खना प्रकाशित स्थान पर और वराह हल्के अंधियारे में। खना की क्षमता के आगे वराह मात्र छाया रह जाता है। खना वराह से पूछती है कि नवरत्नों को राजसभासद के रूप मे उसकी नियुक्ति पर कोई आपत्ति तो नहीं है? वराह कहता है- "विक्रमादित्य के नवरत्नों को सभा में जिह्वाविहीन स्त्रीसभासद चाहिए। यदि स्त्री सभासद बने तो पहले उसकी जीभ काट ली जाए।"[11] यह निर्णय तो खना के विदुषी रूप का निषेध ही है। खना स्वयं उसे स्वीकारते कहती है- "(करुणामयी मुस्कान के साथ स्वगत) स्त्री सभासद ..पिताजी आप तो व्यर्थ ही चिंतित हैं। श्रावण क्या, यह तो आषाढ़ से भी पहले के मेघ हैं, बरसेंगे नहीं। आषाढ़ अभी नहीं आया ..नहीं आया ... आषाढ़ आने में कई संवत्सर बीत जायेंगे... कई युग.... यह नेपथ्य है.. इसे मंच तक पहुँचने में समय लगेगा...कल्पान्त..कई युग...।"[12]

खना की इस कहानी के द्वारा मेधा की माँ अपनी बेटी को यह समझाती है कि जो समस्या अपने पुरुष सहकर्मियों से मेधा को झेलना पड़ता है, वह तो

पुराने काल से विद्यमान है। समाज में मूल परिवर्तन आने पर भी स्त्रियों की स्थिति में उतना ज़्यादा परिवर्तन तो नहीं आया है। पुरुष न तो स्त्रियों को अपने समशीर्ष मानने को तैयार है, न उसकी योग्यताओं को स्वीकारने केलिए। पितृसत्तात्मक व्यवस्था हर समाज केलिए चुनौतीदायक है, जहाँ आज भी हाशिये से केन्द्र में आने केलिए स्त्रियाँ संघर्षरत है। आज शिक्षा और समानता के बावजूद भी पितृसत्तातमक व्यवस्था में स्त्रियों की दशा का संकेत मेधा की माँ के वाक्यों में व्यक्त है कि 'यह विरासत से मिला है। क्या करें वे?' खना की कहानी तो युगयुगान्तर से चली आ रही लिंगभेद की कहानी है।

नाटक में खना की जीभ काट दी जाने की प्रवृत्ति तो प्रतीकात्मक है। जिह्वाविहीन स्त्री समाज में युगयुगों से स्वीकार्य है। खना की जीभ काट जाने को लेकर अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि खना की जीभ काट दी गयी। कुछ का मानना है कि परिवार और श्वसुर को अपमान से बचाने केलिए खना ने स्वयं जीभ काट दी। कुछ लोग मानते हैं कि खना की जीभ वराहमिहिर ने काट ली थी। मेधा कहती है- "मेरी दादी कहती थी कि खना की ज़बान तो खुद वराह ने काटी थी।"[13] जिह्वा स्वयं काट ली या किसीके द्वारा काट ली गयी,अभिव्यक्तिहीन स्त्री ही पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्वीकार्य है ।

नाटक के अन्त में खना मंच के पिछले भाग में प्रज्वलित दीपक लिये मूर्त्तिवत् खड़ी है। यहाँ दीपक प्रतीक्षा का प्रतीक है, किसी न किसी दिन समाज में बदलाव आने की प्रतीक्षा का। उस बदलाव केलिए क्रांति की ज्वाला के समान है वह प्रज्वलित दीपक। खना तो उस स्त्री का प्रतीक बनकर नेपथ्य मे खड़ी है, जो शिक्षित और स्वाध्यायी होने पर भी समाज की मुख्यधारा पर आने में असमर्थ निकली। यह नाटक खना की चुप्पी के माध्यम से कई प्रश्नों को जन्म देता है। स्त्रियों की इस दुर्दशा केलिए मात्र पुरुषमेधा समाज को दोषी नहीं ठहरा सकता, क्योंकि अधिकतर स्त्रियाँ परंपरा पर चलना ही पसंद करती हैं। लीक से हटकर चलने की हिम्मत होने पर ही समाज में बदलाव ला सकता है।

अपनी मेधाशक्ति के कारण सभासद होने का अवसर मिली खना को वैचारिक अभिव्यक्ति करने में असमर्थ सदस्य के रूप में ही स्वीकृति मिलती है। खना तो एक नाम भर है, हर युग की नारी अपने समय की त्रासदी को जीवन का एक हिस्सा मानकर स्वीकार करती आयी है। प्रस्तुत नाटक मिथकीय पृष्ठभूमि में एक समकालीन सत्य को ही हमारे सामने प्रस्तुत करता है। जीभ काट ली गयी स्त्री राजसभा में एक अलंकरण मात्र रह जायेगी। नाटक का अन्त आनेवाली पीढ़ी केलिए प्रतीक्षा देता है कि किसी न किसी दिन नारी को भी समाज में वैचारिक अभिव्यक्ति मिलेगी। सदियों से नेपथ्य में खड़ी रही नारी आनेवाली आज़ादी या पुरुषमेधा समाज से मुक्ति की प्रतीक्षा में है। उसके हाथ में जो प्रज्वलित दीप है, वह तो नारी जीवन में आनेवाली रोशनी का प्रतीक है।

संदर्भ

1. नेपथ्यराग मीराकान्त पृष्ठ संख्या 16, प्रकाशकः भारतीस ज्ञानपीठ प्रकाशन; वर्ष 2004।
2. वही पृ.सं 21
3. वही पृ.सं 22
4. वही पृ.सं 25
5. वही पृ.सं 25
6. वही पृ.सं 47
7. वही पृ.सं 49
8. वही पृ.सं 55
9. वही पृ.सं 57
10. वही पृ.सं 57
11. वही पृ.सं 61
12. वही पृ.सं 61
13. वही पृ.सं 64

◆ असिस्टेंड प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
एन.एस.एस कॉलेज, चेर्तला।

कुबेरनाथ राय के निबंधों में सांस्कृतिक चेतना

♦ मंजू नायर. एस

कुबेरनाथ राय स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी ललित निबंध साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने हिन्दी निबंध साहित्य को नई ऊर्जा प्रदान की है। आपका जन्म 26 मार्च, 1933 को उत्तरप्रदेश के गाजीपुर जिले के मतसाँ गाँव में हुआ था। आपके पितामह कोलकत्ता में रहते हुए पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया करते थे। आपके पिताजी संस्कृत के विद्वान थे। अतः अध्ययन और साहित्य-सृजन कुबेरनाथ जी को विरासत में मिले हैं।

कुबेरनाथ जी एक ऐसे साहित्यकार थे, जिन्होंने अपना सारा जीवन हिन्दी निबंध के उन्नयन एवं प्रतिष्ठापन हेतु समर्पित किया था। अभी तक आपकी 21 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिनमें से 20 निबंध-संग्रह ही हैं। आपके चर्चित निबंध संकलन हैं - प्रिया नीलकंठी, रस आखेटक, गंध मादन,निषाद बाँसुरी, विषाद योग, पर्ण मुकुट, महाकवि की तर्जनी, किरात नदी में चन्द्र मधु, मन पवन की नौका, दृष्टि अभिसार, त्रेता का बृहत्साम, कामधेनु, मराल, वाणी का क्षीर सागर, उत्तरकुरू, चिन्मय भारत, आगन की नाव और देवी का जलयान, अंधकार में अग्निशिखा और रामायण महातीर्थम।

कुबेरनाथ जी के ललित निबंधों में लोक,नगर, अध्यात्म,धरम, प्रकृति और अर्थ की बातें उठायी गई हैं तथा इनमें कल्पनाशक्ति के माध्यम से आधुनिक युगबोध को समेटने का प्रयास किया गया है। इन निबंधों में पौराणिक, मध्यकालीन और आधुनिक कालीन संस्कृतिक चेतना को दर्शाने का सफल प्रयास किया गया है। वस्तुतः कुबेरनाथ जी के निबंध घनी अनुभूति के भण्डार हैं। उनमें विभिन्न सांस्कृतिक चेतनाओं, जैसे- रीति-रिवाज़, धार्मिक संस्कार, उत्सव, त्योहार, जादूमंत्र,आचार-विचार, प्रथायें और अंधविश्वास आदि को पिरोया गया है।आगे कुबेरनाथ जी के ललित निबंधों में अभिव्यक्त भारतीय संस्कृति के विभिन्न तत्वों को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

कुबरनाथ जी के निबंधों से यह स्पष्ट होता जाता है कि लोकसंस्कृति और लोकजीवन के प्रति उनके मन में एक विशेष प्रकार की आस्था उत्पन्न हुई है। उन्हीं के मत में, बंगाल और असम के लोकजीवन और लोकसंस्कृति को निकट से जानने-पहचानने का अवसर मिलने के कारण उन्होंने द्रविड़, निषाद,और किरात संस्कृति संबंधी अनेक निबंध लिखे हैं। भारतीय संस्कृति के आर्य एवं आर्येतर तत्वों के मिश्रण के संबंध में उनका मत है कि "इसका मधु निषादों की देन है, तो इसका तेज आर्यों की देन है।"[1]

'निषाद बाँसुरी' के प्रथम निबंध 'लोक सरस्वती' में लोकजीवन, लोकसंस्कृति, लोकसाहित्य और लोकतत्व का वर्णन किया गया है। 'पाहन नौका', 'पुन चंडीथान', 'यह लो अँजुरी भर कामरूप'! आदि निबंधों में भी लोकजीवन चित्रित हुआ है। 'मानस कूप और कोटर पिशाच' शीर्षक निबंध में भंडुल नामक एक पंडित के माध्यम से ऐसी लोकसंस्कृति का वर्णन किया गया है जो भूत-प्रेतों में विशवास रखते हैं। 'पान-तांबूल' शीर्षक निबंध में असम प्रदेश के पान-सुपारी आदि से जुड़े संदर्भों के माध्यम से असम की लोकसंस्कृति का वर्णन किया गया है। निबंध 'निषाद बाँसुरी' में निषादों के जीवन,उनके विशवास,आचार-विचार, गीत आदि का विस्तृत वर्णन हुआ है। लेखक के अनुसार निषाद भारत

के मूल निवासी थे,जिन्हें 'कोल-मुण्डा' कहा जाता था। आज के केवट उन्हीं के प्रतिनिधि हैं। 'महीमाता' शीर्षक निबंध में आदिम निषाद, द्रविड़ और आर्य जाति के समन्वय का चित्रण मिलता है।

'मन पवन की नौका' शीर्षक निबंध संग्रह में संकिलत दस निबंधों से प्राचीन भारतीय स्वरूप को पहचानने के लिए आवश्यक सभी अभिज्ञान प्राप्त होता है। इस अभिज्ञान की प्राप्ति के लिए दो भूमियों की पहचान विशेष ज़रूरी है। पहली तो है भारत की नींव अर्थात् आर्योत्तर भारत। दूसरी है दक्षिण पूर्व एशिया के हृदय में स्थित भारत। लेखक ने अपनी दो पुस्तकों- 'निषाद बाँसुरी' और 'किरात नदी में चंद्रमधु'- के अन्दर आर्येतर भारत की छवियों और बिम्बों को ललित निबंधों के माध्यम से संकेत रूप में ही सही, प्रस्तुत किया है, तो इस पुस्तक में द्वीपांतर भारत के स्रोतों से लब्ध विषयों और बिम्बों को। ये तीनों किताबें ('निषाद बाँसुरी', 'किरात नदी में चन्द्र मधु' और 'मन पवन की नौका') एकत्रयी रचना हैं - भारती के विशिष्ट आयामों में पुनराविष्कार के संदर्भ में। अतः पुस्तक की प्रासंगिकता या युक्ति हमारे अपने भारतीय पाठकों के प्रति है,और यह सही प्रासंगिकता है।[2] 'मन पवन की नौका' में एक ओर मन जैसे सूक्ष्म और निराकार तत्व का विश्लेषण किया गया है,तो दूसरी ओर समुंद्रमंथन और जलपोत आदि की बृहत समीक्षा भी की गई है। संस्कृत के ग्रंथों में उल्लिखित नौका और उसके अन्य उपादानों की व्याख्या भी की गई है।

किरात-संस्कृति के मुख्य दो विभाजन हैं भेट-मंगोलीय और चीनी-मंगोलीय। तिब्बत-भारत-बर्मा के किरात प्रथम वर्ग में आते हैं। यह संस्कृति लद्दाख, उत्तर कुरु-कूर्मांचल-नेपाल-भूटान से लेकर अरुणाचल-नागालैंड तक विस्तृत है। जिस तरह भारतीय आर्य भारत की भूमि में आकर 'नव्य-आर्य' बना, द्रविड़-निषाद-किरात का स्पर्श पाकर उनकी शील-दृष्टि,सौन्दर्यबोध और प्रकृति अपने सगोत्र ईरानी,यवन या यूरोपीय आर्यों से सर्वथा भिन्न हो गई, वैसे ही भारतीय किरात भी अपने सगोत्रों से भिन्न 'नव किरात' हैं और उनमें भारतीय स्वभाव का अनुप्रवेश हो गया है। किरात प्रथम चरण में निषाद के साथ समन्वित होकर किरात-निषाद बना, फिर दूसरे चरण में वह आर्य के संपर्क में आकर आर्य के साथ समरस हुआ। इन्हीं बातों को 'किरात नदी में चन्द्रमधु' संग्रह के निबंधों में स्पष्ट किया गया है।

'प्राण मुकुट' संग्रह के सभी निबंध लोकायत भारतीय संस्कृति से संबंद्ध हैं। तीसरे निबंध अंभीरिका को लोकायत संस्कृति का काव्य माना गया है। इसमें गुजरात, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और बिहार में फैली-बसी अहीर जाति की लोक सांस्कृतिक परंपराओं, लोक गीतों और उसके जातीय विश्वासों का भावपूर्ण चित्रण हुआ है। यह जाति महाभारत काल से ही लाठीयुद्ध में निपुण रही है। इस जाति की 'लोक-कथा' के मूल की खोज करते हुए उसके प्रभावों की विस्तृत समीक्षा की गई है। लेखक ने माना है कि "राधा-कृष्ण का प्रेम भी आभीर लोक गाथा का अंग है। आभीर जाति की यह कथा बड़े भावपूर्ण स्वरों में गायों द्वारा गाई जाती है। रात्रि में अगर कोई अहीर लोक कथा की एक पंक्ति गायें तो उसे चारों दिशाओं से उसका प्रत्युत्तर मिलता है। इसलिए लेखक का यह कथन दृष्टव्य है। मैं अहीर को जीवित जाति मानता हूँ, सिर्फ एक इसी गुण के लिए और वह गुण है लोक संस्कृति। इसके सामाजिक जीवन में अभी काल तक और बहुत कुछ आज भी लोकगीत,लोकनृत्य और लोकवाद्य सम्मानित था,और है।"[3] 'सत्तुखोरआर्य' निबंध में सत्तु के ज़रिये उनकी लोक संस्कृति का वर्णन किया गया है। लेखक यह मानने को तैयार है कि हमारी सत्तु संस्कृति के पीछे आत्मविश्वास और आत्मगौरव की भावना काम करती

है। छल, छद्म व आत्मप्रवंचना का वहाँ नामो निशान नहीं है। सत्तु की परिशुद्धि वैसे ही की जाती है जैसे बुद्धिमान व्यक्ति बुद्धि परिष्कार से भाषा को एक नया रूप देकर लोकजगत के सामने उपदेशक के रूप में प्रस्तुत होता है। लेखक कहते हैं कि "मैं अध्यापक, साहित्यकार होते हुए भी एक भोजपुरियाँ किसान ही हूँ।"[4] इसलिए अपनी परंपरा को जन्म देनेवाले आर्यों को विस्मृत करने में अपने को अस्मर्थ पाता हूँ।

'कामधेनु' संग्रह के संपूर्ण निबंधों में संस्कृति, इतिहास और लोकजीवन के तत्व भरे पड़े हैं। इसमें 'गाय' शब्द की वैदिक,पौराणिक और ऐतिहासिक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। गौ-पूजा को व्यापक प्राधान्य आर्यों के द्वारा ही दिया गया है। परन्तु उनके आगमन के पूर्व भी गौ और वृषभ लोकायत देवता के रूप में पूज्य थे। पूर्व भारत में गाय की भगवती रूप में उपासना यहाँ के लोकायत धरम का उतराधिकार है जिसके अनुसार गौमुखी दुर्गा ग्राम के जलस्थानों की देवी है। परंतु आर्यों की 'गौ' और 'धेनु' की व्यापक अवधारणाओं के प्रभाव से लोकायत धर्म की जड़ोपासना या पशुपूजा का रूपान्तर हो गया पौराणिक पशुदेवता में।[5] 'शेषशायी' निबंध में शेषनाग पर विश्राम करनेवाले नारायण की अवधारणा का विश्लेषण हुआ है। आदिम भारतीय जातियों में निषाद नदी से जुड़ा था और द्रविड़ समुद्र से, तो यह सहस्रफण नाग देवता नदी संतान निषाद और समुद्र में रत्न ढूँढनेवाले द्रविड़ की संयुक्त उपलब्धि है। 'लोकायत और आदिम श्रद्धा' निबंध में लोकायत संस्कृति का विश्लेषण किया गया है, जो वस्तुतः भारतीय संस्कृति ही है।

'देवी' निबंध में लेखक ने आदिम निषादों की शक्तिपीठ का परिचय देते हुए मानव सभ्यता के विविध सोपानों की व्याख्या की है। प्रागैतिहासिक सभ्यता, सैंधव सभ्यता के क्रम से निषादों, द्रविड़ों और आर्यों द्वारा देवी के रूप में उग्रता से सभ्यता की ओर जो अवधारणा हुई है, उसकी व्याख्या की गई है।

निष्कर्ष स्वरूप कहा जाएगा कि कुबेरनाथ राय के ललित निबंध सांस्कृतिक चेतना से संपुष्ट हैं। भारतीय संस्कृति की विभिन्न अवस्थाओं को आपके निबंधों में देखा जा सकता है। पौराणिक, मध्यकालीन एवं आधुनिक कालीन भारतीय संस्कृति के विभिन्न उतार-चढ़ाव को निबंधों में स्पष्ट किया गया है। यह संस्कृति निबंधों के प्राणस्वरूप विराजमान है, उनमें से हटाया नहीं जा सकता। लोक-संस्कृति और सभ्य संस्कृति की मिली-जुली रंगत कुबेरनाथ जी के निबंधों की सबसे बड़ी बखूबी है।

संदर्भ

1. भोजपुरी लोक मासिक, सितंबर 1981, पृ.सं.27
2. कुबेरनाथ राय, मन पवन की नौका ,पृ.सं.8; प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1982
3. कुबेरनाथ राय, पर्ण मुकुट, पृ.सं.42; लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 1978
4. वही, पृ.सं.171
5. कुबेरनाथ राय, कामधेनु,पृ.सं.5; नाशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, सं. 1990

♦ शोध छात्रा,
एन.एस.एस.हिन्दू कॉलेज,चेग्नाशेरी,
एम.जी यूनिवर्सिटी, कोट्टयम, केरल।

मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ.पी.लता, आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफिस लेन, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम -14 द्वारा अबी प्रकाशन एन्ड प्री-प्रेस, करुमम्, तिरुवनन्तपुरम -2 में मुद्रित तथा डॉ.पी.लता द्वारा संपादित
Printed & Published by Dr.P.Letha, Arathi, T.C. 14/1592, Forest Office Lane, Vazhuthacaud, Thiruvananthapuram -14,
Printed at Abi Design & Pre-Press, Karumom, Thiruvananthapuram -2 & Edited by Dr. P. Letha